अध्याय तीन

कमलेश्वर के कथा-साहित्य में जीवन मूल्य

''कविता लिखने में क्या है?
सभी लिख लेते हैं। लिखना
तो कहानी का है जिसमें
खून-पसीना एक करना पड़ता है।''

- कमलेश्वर

लगभग अपनी अर्द्ध-शताब्दी तक की लंबी कथायात्रा के दौरान कमलेश्वरजी ने हिन्दी कथा जगत को बहुत कुछ दिया है, जिसे उनकी सामाजिक-मंथन शक्ति का जीवन्त उदाहरण कहा जा सकता है। उनकी सभी कहानियाँ तीव्र जीवनानुभूति तथा यथार्थ संवेदना पर आधारित है। कमलेश्वर ने ही स्वयं माना है कि कहानीकार का रास्ता ज़िन्दगी से साहित्य की ओर जाता है। वे लिखते हैं - ''लेखक का रास्ता ज़िन्दगी से साहित्य की ओर जाता है। उनकी कहानियों में सामाजिक विसंगतियों, रूढियों, भय, त्रास, मृत्यु से जुडी विडंबनाओं का सशक्त चित्रण किया गया है और उन पर तीखा व्यंग्य भी।''[1]

कमलेश्वर की दृष्टि में कहानी अनुभव है। उनकी कहानियों में गहन पीड़ा है। व्यापक अनुभूति है, गहरी दृष्टि है तथा संवेदन तीव्रता है। उनमें बदलते मूल्यों और बनते-बिगड़ते संबंधों का चित्र प्रस्तुत होता है। कहा जा सकता है कि वे हमारी ज़िन्दगी के प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत करती हैं। ज़िन्दगी में आम आदमी को भय, शोषण, अपमान, दमन और छल सहना पड़ता है। निम्न-स्तर के लोग सदा तकलीफों से ग्रस्त हैं। स्वयं आम आदमी की प्रतिनिधि कथाकार होने के नाते आम-आदमी की पीड़ा कमलेश्वर की पीड़ा है। उनके ही शब्दों में ''हम स्वयं सामान्य आदमी हैं। उसी सामान्य जन में शामिल, हमारी संबद्धता उसी के प्रति हो सकती है, यह संबद्धता हर स्तर पर हैं, क्योंकि मामूली आदमी हर स्तर पर भय, छल, शोषण, अपमान, दमन से आहत है, मूर्त व अमूर्त तकलीफों से ग्रस्त है, उसी वर्ग से, इसी वर्ग के प्रति और इसी वर्ग से संबद्ध हैं।''[2]

डॉ. रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में ''नयी कहानी के प्रति लेखकों मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर में कमलेश्वर ही ऐसे हैं जिन्होंने सामाजिक विसंगतियों, टूटते हुए जीवन, बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और व्यक्ति के अमानवीकरण को वाणी देने का प्रयत्न किया है।''[3]

कमलेश्वर को कस्बे का कलाकार माना गया है। कस्बाई संस्कृति और परिवर्तन का यथातथ चित्रण जैसे कमलेश्वर की रचनाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र

कहीं नहीं मिलता। उनकी कहानियों में कस्बे के आदमियों के कई स्तर चित्रित हैं, जो जीवन के विभिन्न रूपों के प्रतीक हैं, पहले स्तर पर कस्बे के आदमी की मासूमियत का प्रतीक है, जिसकी वह हर कुर्बानी के साथ रक्षा करना चाहता है। दूसरे स्तर पर कस्बे के संबंधों की टूटन का प्रतीक आता है, जिसकी अभिव्यक्ति पीड़ित मानवता को लेकर हुई है। तीसरा स्तर संवेदना से जुड़ी हुई है। चौथे स्तर पर मानवीय संघर्षों को जीवित रखने की इच्छा झलकती है, इस के लिए कथाकार को कभी-कभी रौमैंटिक बोध यथार्थोन्मुखी आदर्शवादिता का सहारा लेना पड़ता है। कस्बे के संबंधित उनकी सभी-कहानियाँ जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म धड़कनों से स्पन्दित हैं। डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार- ''कस्बे की ज़िन्दगी का बड़ा सूक्ष्म-अध्ययन लेखक की कहानियों में मिलता है। उसकी सजगता ने लेखक के उस अकृत्रिमभाव बोध को क्षती पहूँचाई है, जो उसकी कहानियों की एक प्रमुख विशेषता रही हैं।''[4]

दूसरे दौर की कहानियाँ व्यक्ति को लेकर चलती हैं। शहर के आदमी के पास कई स्वप्न हैं, जीवन मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता है और अच्छी ज़िन्दगी जीने की लालस है। परन्तु नगर की भीड़ में आत्मसत्ता खोकर अपनी सारी संवेदनाएँ टूट जाती हैं, भीड़ में वह भी एक अजनबी की तरह चलता रहता है।

अंतिम दौर की कहानियों से महानगरीय सभ्यता और संस्कृति को निकटता से जान लेने का अवसर कहानीकार को प्राप्त होता है, फिर भी इन सबके पीछे आम आदमी को ही प्रमुखता दी गयी है। इसलिए इनमें सामाजिक-जीवन को ही कथ्य बनाया गया है। डॉ. विजयमोहन सिंह के अनुसार- ''कमलेश्वर की दृष्टि कहानी के पीछे ज़िन्दगी, उसे बुननेवाले सामाजिक धागों की ओर ज़्यादा रही है।''[5]

3.1 कमलेश्वर की कहानियाँ

कमलेश्वर के दस से अधिक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें प्रमुख हैं -

1. राजा निरबंसिया
2. कस्बे का आदमी
3. बयान
4. माँस का दरिया
5. खोई हुई दिशाएँ
6. जिन्दा मुर्दा
7. इतने अच्छे दिन
8. कथा प्रस्थान
9. मेरी प्रिय कहानियाँ
10. कोहरा

इन दस कहानी संकलनों में उनकी 112 कहानियाँ संकलित हैं। इन दस कहानी संकलनों के अलावा कमलेश्वर की अनेक कहानियाँ भी है। इसलिए हमें यह कहना होगा की कमलेश्वर ने कुल मिलाकर तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखी है।

3.2 कमलेश्वर की कहानियों में जीवन मूल्य

कमलेश्वर के जीवन विषयक दृष्टिकोण को समझने के लिए सबसे पहले सामाजिक संस्था के विषय में उसके दृष्टिकोण को जानना आवश्यक है। रचनाओं के अंतर्गत दो रूपों में कमलेश्वर का सामाजिक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। उनकी कहानियाँ एक ओर परिवार के बदलते स्वरूप को प्रस्तुत करती हैं और दूसरी ओर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है।

3.2.1 बदलते पारिवारिक मूल्य

परिवर्तित जीवन बोध-का काफी प्रभाव मानवीय सम्बन्धों की महत्वपूर्ण इकाई 'परिवार' को भी झेलना पड़ा। परिवार की मानवीय सम्बन्धों की वह मंच है, जहाँ मानव के बहुविध सम्बन्ध दिखायी देते हैं, मानवीय सम्बन्धों के अनेक कोण स्थापित होते हैं। किन्तु आधुनिक युग में परिवारों की पूर्ववत स्थिति कायम नहीं रह सकी। परिवार महत्व के प्रति देखने का दृष्टिकोण बदल गया। पहले जहाँ परिवार

की विभिन्न इकाइयाँ परिवार की सुरक्षा केलिए स्वयं को समर्पित कर देती थीं, वहाँ अब कोई भी इकाई परिवार में अपने आपको विलीन करने केलिए तैयार नहीं हैं। परिवार के सदस्य अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित करने की कोशिश में लगे हुए हैं। परिणामस्वरूप परिवार में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। यहाँ हमें यहीं देखना है कि परिवार में होने वाले परिवर्तन को कमलेश्वर की दृष्टिकोण किस संदर्भ में और किस स्तर पर पकड़ता है।

वैसे तो हर काल में मानव-जीवन परिवर्तन की प्रक्रिया में से गुजरता ही है, किन्तु कोई युग अपने साथ-बड़ी तीव्र परिवर्तन प्रक्रिया लाता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत एक नवीन परिवर्तित रूप में हमारे सामने आता जहाँ एक ओर परम्परा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी ओर सामाजिक पारिवारिक सम्बन्धों के परम्परा बद्ध रूप में परिवर्तन आ रहा था। कमलेश्वर की 'लहर लौट गयी', 'तीन दिन पहले की रात', 'देवा की माँ', 'दुनिया बहुत बड़ी है' और 'दूसरे' आदि कहानियाँ बदलते पारिवारिक स्वरूप के संदर्भ में अलग-अलग कोणों को उद्‌घाटित करती हैं। ''वह समय और साधन उनके नहीं है'', दिवाकर बोला, ''अगर हर आदमी अकेला जीता होता तो क्या ये सुविधाएँ उनके पास हाती? हम आज भी जंगलों में जानवरों की तरह भटकते होते। इन अतिरिक्त सुविधाओं के लिए सभी ने जाने- अनजाने हाथ बटाया है, यह उन्होंने पैदा की हैं, जो इनके लिए

तरस रहे हैं। व्यक्ति इत्र छिड़ककर फूल सूँघता हुआ इन फटेहालों के बीच से निरपेक्ष होकर गुजर सकता है, आदमी नहीं। व्यक्ति सुरक्षा चाहता है, आदमी स्वतन्त्रता चाहता है। सुरक्षा और स्वतन्त्रता में बड़ा अन्तर है। स्वतन्त्रता एक का नहीं, सबका अधिकार है।''[6]

3.2.1.1 माता-पिता के रिश्ते में आए बदलाव

हमारी स्थापित पारिवारिक व्यवस्था में माता-पिता की एक निश्चित और सुदृढ़ स्थिति रही है। परिवार के उत्तरदायी होने के नाते घर की हर समस्या का समाधान और निर्णय उन्हीं के द्वारा लिया जाता रहा है। इस प्रकार समूचे परिवार पर उनका पूरा अंकुश और वर्चस्व रहा है। परिवार के अन्य सदस्यों का उनके प्रति सदैव सम्मान का भाव और आदेश पालन की मुद्रा रही है। इस प्रकार अब तो माता-पिता परिवार के सर्वोपालक थे और परिवार की सत्ता उनके हाथों में थी। बच्चों की ज़िन्दगी के रास्ते भी वे ही तय किया करते थे। बच्चों के हर कार्य में माता-पिता का नियंत्रण था। इस प्रकार माता-पिता की स्थिति परिवार में एक शासक जैसी थी। उनके नियन्त्रण के अन्तर्गत पूरा परिवार एक सूत्र में बाँधकर एक इकाई का रूप धारण करता था। इस प्रकार माता-पिता की स्थिति परिवार के कर्त्र-धर्त्ता बन पारिवारिक मूल्यों की सुरक्षा के प्रयास में लगे रहते थे। लेकिन इधर इस स्थिति में परिवर्तन आने लगा। जीवन-दृष्टिकोण में बदलाव के कारण परिवार का

पारम्परिक रूप स्थिर नहीं रह सका है। नये के आगमन के अनिवार्यता के सामने अपने सत्ता और परिवार के स्वरूप को टिकाए रखने के अत्यधिक प्रयास के बावजूद परिवार के ये सत्ताधारी व्यक्ति इस प्रयास में सफल नहीं हो सके। परिवार के सत्ताधारियों में बेटे-बेटियों को नियन्त्रित करने वाले माता-पिता भी हैं और पत्नी पर शासन करने वाला पति भी है।

परिवार की सुदृढ़ नींव और उसमें पुरानी पीढ़ी की सत्ता के हिलने के प्रारम्भिक आभास 'लहर लौट गयी' में मिलता है। ''दुनिया देखने की खुली छूट थी, लेकिन दुनिया देखने केलिए भाइयों पिताजी की और सविधा को माँ की आँखों उधार लेनी पड़ती थीं।''[7] सविता के माता-पिता परिवार के प्रारम्भिक सुरक्षा केलिए विकल परिवार के मुखिया के रूप में सामने आते हालाँकि अब घर की व्यवस्था में, घर के लोगों के आपसी सम्बन्धों में तथा बाहर की दृष्टि और उनकी विचारधारा में काफी बदलाव आ रहा है। फिर भी माँ बाप अपनी जगह टिके रहने की कोशिश में पूरी तरह लगे हुए हैं। बेटी की स्थिति और समस्या के मामले में अभी भी वे उन पुराने मान-मूल्यों पर चल रहे हैं। घर की प्रतिष्ठा बेटी के रूप में उनके सामने एक प्रश्न बनकर खड़ी है और बेटी का कोई गलत कदम उनकी इज्जत आबरू को मिट्टी में न मिला दे, इस आशंका से वे सदैव आतंकित रहते हैं। परिणामस्वरूप उन्होंने बेटी के लिए कुछ सीमाएँ निश्चित कर दी है, जिनसे बाहर जाना उसके लिए

सम्भव नहीं होता। अपने दोस्त के बेटे कैलाश को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाने का काफी गर्व और अभिमान था उन्हें और अपने इस कार्य की कहानी वे हर किसी को सुनाते रहे। पर जब तक वह उनके पास रहा तब तक उन्होंने कभी कैलाश को घर के भीतर पैर रखने नहीं दिया। सविता पर सदैव उनकी सतर्क नज़रें लगी रहीं। सविता के विवाह की समस्या का समाधान वे उसी पुराने तरीके से करना चाहते थे, कि बेटे की शादी के दहेज से वे बेटी का विवाह धूमधाम से कर देंगे। पर तीनों बेटे विवाह के बाद तुरन्त अलग हो गये।

परिणामस्वरूप पैसे के अभाव में वे बेटी के लिए वर नहीं ढूँढ़ पाये। हालाँकि कैलाश को खुद उन्होंने ही अपने पास रखकर योग्य बनाया था पर, फिर भी वे उसके साथ सविता के विवाह की बात नहीं सोच सके। सारी कशमकश के बावजूद वे अपने प्रयासों में सफल रहे और यहाँ परम्परागत पारिवारिक मूल्यों की विजय हुई। सविता को वे अन्त तक अपने नियन्त्रण में रख पाने में सफल हुए। सारी घुटन के बावजूद वह माँ-बाप की आज्ञाकारिणी बेटी बनी रही। इस प्रकार यहाँ परिवार का पारम्परिक स्वरूप सुरक्षित रहा। फिर भी कुछ बातें उसकी जड़ के किंचित हिल उठने का और परिवार के मुखिया के सिंहासन के डोल जाने का संकेत ज़रूर देती हैं। पारम्परिक मूल्यों के विघटन की प्रारम्भिक प्रक्रिया का सूक्ष्म सा आभास इस स्थिति में मिलता है कि बिना धन के केवल कुल और वंश तथा

प्रतिष्ठा के आधार पर माता-पिता सविता केलिए कोई लड़का ढूँढ़ नहीं पाते। यहाँ परिवार के प्रश्नों को सुलझाने के पुराने तरीके के अर्थहीन होते जाने का संकेत है।

3.2.1.2 पुरानी पीढ़ी की मानसिकता में आया बदलाव

बेटों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी घर के मुखिया की ढृढ़ स्थिति के सामने प्रश्नचिह्न बनकर खड़ा हो जाता है। कमलेश्वर की 'लहर लौट गयी' कहानी परिवार के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन के प्रारम्भ होने का संकेत देती है। पुरानी पीढ़ी की मानसिकता आने वाले नयेपन को, परिवार में अपनी बदलती स्थिति और अपने बच्चों के रवैये को सह नहीं पाती। इस प्रकार 'लहर लौट गयी' में पूरी तरह से पारिवारिक विघटन नहीं है, बल्कि स्थापित परिवार की जड़ों के हिल उठने की स्थिति है। अभी भी परिवार के पुराने सदस्य अपनी सत्ता पर जमे हुए हैं, पर अब वे अपने स्थान के हिल उठने का अनुभव कर रहे हैं। ''उसे आज तक किसी ने प्यार नहीं किया। किसी ने हसरत- भरी निगाहों से नहीं देखा... और अब तो सब बीता गया... धीरे-धीरे सब बीत जाएगा-वह वीरान रेगिस्तान की तरह पड़ी रह जाएगी...।[8] वे उसे पुनः स्थिर करने की कोशिश में लगे हुए हैं। अन्त में जीत यहाँ पारम्परिक परिवार मूल्यों की ही होती है।

यह स्थिति दूसरे स्तर पर 'तीन दिन पहले की रात' में मिलती है। इसमें मीना सविता के समान इतनी मज़बूर नहीं है, न उस पर माता-पिता का इतना कड़ा

नियन्त्रण ही है। वह दिवाकर से, जितने से और अमर से मिलती है। उनसे प्यार छिपा-छिपाकर नही, दिखा-दिखाकर करती है। इन सारे अवसरों पर माता-पिता उसकी सहायता ही करते हैं। उसके मम्मी-डेडी पहले दिवाकर की तारीफ करते हैं, उसे घर पर आमन्त्रित करते हैं, और मीना से सम्पर्क की छूट देते हैं। पर फिर धीरे-धीरे दिवाकर का स्थान जितेन ले लेता है। दिवाकर की उपेक्षा कर दी जाती है। मीना जो कि भावात्मक स्तर पर दिवाकर के प्रति आकर्षित थी, उसे चोट लगती है। तब मम्मी-डेडी उसे बडे प्यार से समझाते हैं। उसे जितेन के प्रति आकर्षित किया जाता है, यहाँ बड़े ही अनजान तरीके से दे अपनी सारी बातें मीना से मनवाने चले जाते हैं और उसका मानसिक परिवर्तन करने में सफल होते हैं। कुछ दिनों बाद फिर मीना मानसिक यातना में से गुज़रने लगती है। किन्तु फिर मम्मी-डेडी उसे अमर के प्रति आकर्षित करने में सफल हो जाते हैं। ‘‘उसका आना-जाना बहुत बढ़ गया था। उसका पौरूष मुझे इसलिए और भी आकर्षित करता था कि मेरे वह छोटा होता जाता था। इस अनुभव में विचित्र सा सुख मिलता! अधिकार का अनुभव होता । मैं केवल एक मोम का आदमी चाहती थी, जिसे मैं अपना कह सकूँ, जिसे अपनी तर बना सकूँ, उसका कर सकूँ, जिससे मेरी सार्थकता सिद्ध हो जाए।’’[9] अन्त में मीना की शादी अमर से हो जाती है। मीना के मम्मी-डेडी सविता के माँ-बाप की तरह पिछड़े हुए नहीं है, बल्कि आधुनिक समाज के सदस्य है। अतः उनका परिवार

एक आधुनिक परिवार है, जहाँ मीना जैसी लड़की को वे काफी स्वतन्त्रता देती हैं। शाम को दिवाकर या जितेन के आने पर छोटी सी महफिल जमती है और फिर वाद-विवाद, हँसी-मजाक आदि सभी कुछ चलता है। किन्तु थोड़ा गहराई से देखने पर पता चलेगा कि रहन-सहन के तौर-तरीकों में आधुनिक होने के बावजूद मीना के मम्मी-डेडी मानसिक रूप से अभी भी परम्परागत माँ-बाप ही है। मीना को लड़कों के साथ घूमने-फिरने और खुला व्यवहार करने की छूट उन्होंने ज़रूर दी है पर उसके विवाह का निर्णय करने की स्वतन्त्रता उसे नहीं है। इस निर्णय को उन्होंने अपने ही हाथों में रखा है। मीना पहले दिवाकर से शादी करना चाहती है। पर वे उसकी इच्छा को पूरी नहीं करते बल्कि अपनी बात को मनवाने या पुराना तरीका भी वे अख्तियार नहीं करते हैं। वे मीना पर किसी प्रकार की जबर्दस्ती नहीं करते, जैसी कि सविता पर उसके माता-पिता करते हैं, बल्कि समझा-बुझाकर उसकी भावनाओं को, उसकी इच्छा को परिवर्तित करते हैं और अन्त में अपनी पसन्द के लड़के अमर से उसकी शादी करवाते हैं। इस प्रकार मीना को उन्हीं का निर्णय मानना पड़ता हैं। पर सारी योजना वे इस प्रकार बनाते हैं कि, उनका वह निर्णय मीना को अपना ही निर्णय लगता है।

वास्तव में सविता के माँ-बाप की तरह ही मीना के मम्मी-डेडी भी नये युग के उस परिवर्तन को, जो परिवार में माता-पिता के वर्चस्व को कम कर दे सह

नहीं पाते। वे अपनी पूर्ववत स्थिति और सत्ता बरकरार रखना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने सविता के माता-पिता से अलग एक ऐसा नया रास्ता निकाला कि, जहाँ मीना को महसूस न हो कि मम्मी-डेडी उस पर अपनी निर्णय लाद रहे हैं, बल्कि उनके निर्णय को वह अपना निर्णय मानकर चले। वे मीना को दिवाकर या जितेन से मिलने की, बातचीत करने की जो छूट देते हैं, उससे मीना को लगता है कि वह स्वतन्त्र है। उस पर कोई कड़ा नियंत्रण नहीं है। विवाह की बात चलने पर वे इस प्रकार की घटनाओं, परिस्थितियों और वातावरण का निर्माण करते हैं कि अपने आप मीना अपनी इच्छा से मुक्त हो उन के बताये रास्ते पर चलने लगती है। इस प्रकार मम्मी-डेड़ी बड़े बेमालुम तरीके से हलकी सी साजिश रचते है, जहाँ मीना को यह महसूस हो कि वह स्वतन्त्र है और कि उसकी स्वतन्त्रता को स्वीकार किया जा रहा है। इस प्रकार इस कहानी में भी अभी परिवार के पूरी तरह टूटने की स्थिति या दो पीढ़ियों का प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं है। बल्कि परिवर्तन का एक नाजुक सा मोड़ दिखायी देता है। जीत अन्त में यहाँ भी परम्परागत पारिवारिक मूल्यों की ही होती है। मम्मी-डेडी का स्थान पूर्ववत् सुरक्षित रहता है और वे मीना की जिन्दगी का अपने विचारों के अनुसार निर्णय लेने में सफल हो जाते हैं। मीना को उनके निर्णय का अनुसरण करना पड़ता है। किन्तु फिर भी मम्मी-डेडी का अपने स्थान की सुरक्षा के लिए नया रास्ता अपनाने को विवश होना और मीना का मम्मी के प्रति हलका सा विरोध-परिवर्तन की शुरूआत का आभास ज़रूर देते हैं। सविता बिलकुल ही

मौन रहकर माँ-बाप की हर बात को मानती चलती है, मीना छटपटाती है और असफल विरोध करती है किन्तु 'देवा की माँ' में चित्रित परम्परागत संस्था के प्रति पूरी तरह से विद्रोह करती है।

'लहर लौट गयी' और 'तीन दिन पहले की रात' में परिवार के परम्परागत मूल्यों की रक्षा हो पाती है, किंचित चरमराकर फिर पारम्परिक व्यवस्था स्थिर होती है, माता-पिता बच्चों को नियंत्रित करने में सफल हो जाते हैं। पर आगे ये संस्थाएँ अपनी जगह टिकाए रखने के प्रयास में सफल नहीं हो पाती।

3.2.1.3 परम्परागत पत्नी के रूप में आया परिवर्तन

परिवार का यह प्रत्यक्ष विघटन और पारम्परिक मूल्यों के पराजय की कहानी 'देवा की माँ', नारी के पति के प्रति समर्पित परम्परागत पत्नी रूप से मुक्त हो, स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रति सजगता की कहानी है। परम्परागत आस्था के अनुसार पत्नी के लिए पति की हर बात आदर्श होती है। उसी के अनुसार जीवन को ढालने में वह सार्थकता का अनुभव करती है। क्योंकि पति पत्नी का 'स्वामी' हुआ करता है। जिसकी हर बात का अनुसरण और आदेश का पालन पत्नी के द्वारा किया जाता रहा है। स्वाभाविक ही है कि पति के अधिकारों और सत्ता का क्षेत्र पत्नी की तुलना में काफी व्यापक रहा है। पति के सम्मुख पत्नी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व, निजी, विचारधारा जैसी कोई चीज नहीं थी। पति उस पर एकछत्र शासन करता था।

देवा का पति भी एक ऐसा ही पति है, जो पत्नी की इच्छा-अनिच्छा के सम्बन्ध में कुछ सोचे बगैर उसके साथ मनमाना व्यवहार करता है। पत्नी के प्रति एक पति के जो नैतिक कर्तव्य होते हैं, उसका निर्वाह किये बगैर भी पत्नी पर वह शासन करता है। देवा की माँ एक आदर्श पत्नी की तरह उसके अत्याचारों को सहती रही। ''उस दिन सभी घरों में यही चर्चा थी... पीछे-पीछे देवा की माँ की बुराइयाँ भी बड़ी ईमानदारी से बयान की जा रही थीं और उससे भी ज्यादा ईमानदारी और चिन्ता से उसकी सहनशक्ति, सन्तोष और मुसीबतों को दोहराय जा रहा था।''[10] उसके दूसरी शादी करने, स्वयं को त्याग देने और किसी प्रकार की आर्थिक सहायता न करने पर भी देवा की माँ उसे पति के रूप में स्वीकारती रही। लेकिन देवा के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिए देवा का पिता एक चलाकी भरा कदम उठाता है। वह देवा की माँ पर ही देवा का सारा भार डालने के लिये उसे कहता है कि देवा उसी की निगरानी में रहे तो अच्छा है। माँ के नियन्त्रण में वह आदमी बन सकेगा। उन्नति कर सकेगा ये सारी बातें उसने पुत्र-प्रेम से वशीभूत होकर नहीं की थीं, बल्कि माँ-बेटे से छुटकारा पाने का एक खुबसूरत रास्ता तलाश किया था। देवा के जेल चले जाने पर भी जब उसे छुड़ाने का कोई प्रयास उसके पिता के द्वारा नहीं किया जाता, तब देवा की माँ को अपने पति के इस चालाकी भरे धोखे का पता चलता है तब वह व्यवहारिक और भावात्मक दोनों स्तरों पर पति के

अस्तित्व को नकारती हुई परम्परागत पति-संस्था के प्रति विद्रोह करती है और अपनी स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा करती है। यहाँ वह पति के वर्चस्व से पूरी तरह मुक्त होने में सफल हो जाती है। कहानी में पति के प्रति अन्धविश्वास, देवा की माँ एक परम्परागत पत्नी ही लगती है, किन्तु अन्त तक पहूँचते-पहूँचते वह अपनी मुक्ति के प्रयास में सफल होती है।

पति की बीमारी की बात सुन माँग में सिन्दूर भरना, किन्तु देवा के पूछने पर पति की मिलने से इन्कार करने का देवा की माँ का निर्णय पारम्परिक परिवार में आमूल परिवर्तन और पारिवारिक विघटन को प्रस्तुत करता है। यहाँ परम्परागत पारिवारिक मूल्यों की पराजय होती है क्योंकि पत्नी पति के नियन्त्रण से पूर्णतः मुक्त हो जाती है। वह पति के अस्तित्व में पूरी तरह विलीन नहीं होती, बल्कि अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की स्थापना करती है। इस प्रकार देवा की माँ उसे केवल 'पत्नी' बनाये रखने वाली पारिवारिक संस्था और पति-संस्था से विद्रोह करती हुई अपनी स्वतन्त्र व्यक्ति सत्ता की सुरक्षा का प्रयास करती है। इस प्रकार 'देवा की माँ' में नवीन नारी का स्वर सुनायी पड़ता है, जो नये मूल्यों की सृष्टि करता है।

3.2.1.4 पारिवारिक मूल्यों पर आया आर्थिक संकट

परम्परागत पारिवारिक मूल्यों की असमानता के संदर्भ में पारिवारिक विघटन की कहानियों के अलावा कमलेश्वर के पास पारिवारिक विघटन का एक

और महत्वपूर्ण संदर्भ मिलता है। वह है परिवारों पर आया आर्थिक संकट। आर्थिक संकट जूझते परिवारों में आज परिवार के किसी निकम्मे सदस्य के लिए, कोई सम्मानजनक स्थिति नहीं बची है। 'दुनिया बहुत बड़ी है' की अन्नपूर्णा भी अपने परिवार केलिए केवल एक निकम्मी चीज़ बनकर रह गयी है। पति की मृत्यु के बाद जब वह देवर के परिवार में रहने लगती है, तब उसे एक बोझ समझकर वहन किया जाता है। तीस वर्ष तक अपने ही परिवार में तन और मन दोनों को खपा देने के बावजूद वह उस परिवार का अंग नहीं बन पाती। उसके मन में मोह परिवार से जुड़ पाने की इच्छा है, परिवार की एक सार्थक इकाई बनने की चाह है। लेकिन धन के आधार पर जहाँ रिश्ते तुलते हो वहाँ उस जैसी स्त्री का किसी परिवार में, उसके अभिन्न सदस्य के रूप में, रह पाना सम्भव नहीं हो पाता। तब यह सोचकर वह छोड़ जाती है कि दुनिया बहुत बड़ी है - कहीं भी रोटी-दाल का जुगाड़ हो जाएगा। लेकिन गाँव पहूँचने पर उसे पता चलता है कि दुनिया भी उन्हीं के लिए बड़ी है, जिनके पास अर्थ की शक्ति है। वरना एक पराश्रित स्त्री के लिए यह बड़ी दुनिया केवल उस परिवार तक सीमित हो जाती है, जो उसका आश्रय दाता है।

आर्थिक संकट के कारण अन्नपूर्णा को अपने ही परिवार में अपमान और उपेक्षा, भरी जिन्दगी मिलती है, तो 'दूसरे' कहानी में सुनीता का पूरा परिवार आर्थिक संकट के कारण निराश्रित या पराश्रित हो चुका है। यहाँ आर्थिक संकट ने पूरे घर के वजूद को निरर्थक कर दिया है। नयी स्थितियों, परिस्थितियों ने जिन्दगी

को सन्तुलन देने वाली परम्परागत व्यवस्था को निकम्मा कर दिया है। आज धर्म, जाति, वंश, कुल, मान-मर्यादा आदि सभी का स्थान अर्थ ने ले लिया है। आज अर्थ ही हमारी ज़िन्दगी का वह केन्द्र है, जहाँ से जीवन को चालना मिलती है। आर्थिक स्थिति ही जीवन के रूप-स्वरूप का निर्णय देती है। आज अपनी योग्यता को प्रकट करने के लिए भी आर्थिक दृष्टि से संपन्न होना ज़रूरी हो गया है। सुनीता का परिवार आर्थिक संकट के इसी नागफंस में से गुजरता है।

इस संकट ने पूरे परिवार को बेचारा और पराश्रित बना दिया है और घर में वे लोग अनजाने तरीकों से या अदृश्य रूप में आ गये हैं, जिनकी दया पर घर पलता है। घर की बागडोर उन्हीं दूसरों के हाथ में है। सुनीता के पिता घर के मुखिया होने के बावजूद मुखिया नहीं रहे हैं। क्योंकि उनके पास अर्थ की वह शक्ति नहीं है, जिसके द्वारा वे घर के शासन का सूत्र अपने हाथ में थाम परिवार के मुखिया की भूमिका का निर्वाह कर सकें। वे सदैव दूसरों पर निर्भर करते हैं। अपने मूलभूत अधिकारों को भी दूसरों के निर्णयों की भेंट चढ़ा देते हैं। सुनीता घर में सबसे बड़ी पढ़ी - लिखी लड़की है, जो कभी-कभी छोटी-मोटी नौकरी के द्वारा घर की आर्थिक स्थिति को संतुलित बनाये रखने का प्रयत्न करती है। पर वह भी घर में छोटे से छोटा निर्णय लेने केलिए भी स्वतन्त्र नहीं है। वह शादी जैसे ज़िन्दगी के सबसे महत्वपूर्ण निर्णय को लेने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं है।

घर में बच्चों की पढ़ाई, कपडों की सिलाई, वोट देने और सुनीता की शादी से सम्बन्धित सभी का निर्णय दूसरे लोग करते हैं। घर के सारे लोग इच्छा या अनिच्छा से दूसरों के निर्णयों को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार घर का हर व्यक्ति निरीह और मोहताज बनकर रह गया है। आज अर्थ का महत्व हमारी जिन्दगी में इस कदर बढ़ गया है कि हमारे अस्तित्व, हमारे व्यक्तित्व के सामर्थ्य, और व्यक्तित्व सम्पन्नता की स्थितियाँ उससे जुड़ गयी हैं। आर्थिक दृष्टि से निर्धन व्यक्ति व्यक्तित्वहीन रह जाता है। ''और कुछ मामूली - सी खर्च की ज़रूरत पूरी करने के लिए पंखे को अलग कर- देने की बात फिर उठती है। सुनिता को रह-रहकर लगता है कि इस फैसले को भी रोक नहीं सकती। उसके हाथ में कुछ भी नहीं है।''[11] अपने ही घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहता। परिवार का कोई सदस्य परिवार में अपनी सही भूमिका को अदा नहीं कर पाता। वास्तव में परिवार की एक भूमिका होती है। यहाँ सारे लोग भावात्मक धरातल पर परस्पर जुड़े रहते हैं। उनके अधिकारों की, निर्णयों की, परस्पर कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों की निश्चित स्थितियाँ होती हैं। आर्थिक शक्ति इन सब में समन्वय स्थापित करती हुई परिवार को एक सुसंगठित इकाई बनाती है।

किन्तु 'दूसरे' कहानी का आर्थिक संकट परिवार को 'पारिवारिक इकाई' के स्वरूप से वंचित कर देता है। इस अर्थ में यहाँ परिवार की व्यावहारिक सत्ता ही

समाप्त हो चुकी है। क्योंकि जिस भूमिका के आधार पर परिवार एक सुगठित इकाई के रूप में स्थिर होता है, वह भूमिका ही अपने स्थान से हिल गयी है। यहाँ माता-पिता केवल जन्मदाता बनकर रह गये हैं। बच्चों को जन्म देने के अलावा वे उनके लिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं।

इस प्रकार अपनी इन कहानियों में कमलेश्वर ने अपने युग की अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या आर्थिक-संकट को अभिव्यक्त किया है। इसी के कारण साधारण लोगों का कायदे से जी पाना असम्भव हो गया है। इस प्रकार पारिवारिक विघटन के दो कोन तथा दो संदर्भ कमलेश्वर की कहानियों में मिलते हैं। एक ओर नैतिक तथा पारस्परिक मूल्यों की असारता के कारण विघटित होता परिवार तथा दूसरी ओर आर्थिक संकट के कारण विघटित होता परिवार है।

3.2.2 सामाजिक मूल्य

परिवार के बदलते हुए स्वरूप के अलावा कमलेश्वर का सामाजिक दृष्टिकोण स्त्री-पुरुष के परिवर्तित होते सम्बन्धों में विश्लेषित हुआ है। इस के अन्तर्गत परिवार की छोटी इकाइयों में पति-पत्नी के सम्बन्ध महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि परिवर्तन का प्रभाव सबसे अधिक इन्हीं पर दिखायी देता है साथ ही आगे परिवार का विकास भी इन्हीं के द्वारा होता है। आधुनिक युग में नारी भी शिक्षा प्राप्त कर बौद्धिक सजगता प्राप्त कर रही है। परिणामस्वरूप अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के प्रति

वह सचेत है। अतः पति-पत्नी सम्बन्धों में बदलाव अनिवार्य है। स्त्री-पुरुष के बीच इन संस्थागत रिश्ते के अलावा विशुद्ध 'नारी' और 'पुरुष' के रूप में भी दोनों के सम्बन्धों पर कमलेश्वर ने विचार किया है।

पुरानी कहानी में स्त्री और पुरुष दोनों ही स्वतन्त्र व्यक्तित्व से विहीन है, जिनकी परम्परागत रूढ़ियों से हटकर अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। किन्तु आधुनिक युग में इन दोनों ने ही अपनी इस नियन्त्रित स्थिति को पहचाना और यह भी महसूस किया कि, इस स्थिति के कारण उनका स्वतन्त्र अस्तित्व विकसित नहीं हो पा रहा है। जहाँ से स्त्री और पुरुष ने यह जानना शुरू किया, वहीं से उनका मुक्ति-संघर्ष शुरू हो गया। स्त्री ने पुरुष के आधिपत्य तथा पारम्परिक रूढ़ियों से शासित अपनी व्यक्ति-सत्ता को मुक्त करने की कोशिश की इस प्रकार पुरुष की तुलना में स्त्री दोहरी सत्ता के नियन्त्रण में जी रही थी। इसीलिए नयी कहानी ने नारी की समस्या पर अपने आपको अधिक केन्द्रित किया है। कारण शायद यह है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का यह संघर्ष अधिक तीव्र है। अतः नयी कहानी में पुरुष अपेक्षाकृत स्थिर है और स्त्री अधिक सक्रिय है। कमलेश्वर ने कहीं परम्परागत रूढ़ स्थितियों का उपहासात्मक स्वर में विरोध किया है, कहीं नारी के अस्तित्व-संघर्ष को स्वर दिया है और कहीं नारी के द्वारा लिये गये स्वस्थ और साहसी निर्णय को अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के कुछ विशिष्ट कोण उनकी

'प्रेमिका', 'खोई हुई दिशाएँ', 'कस्बे का आदमी', 'सींखचे', 'आत्मा की आवाज़', 'राजा निरबंसिया', 'दुःखों के रास्ते', 'माँस का दरिया', 'जो लिखा नहीं जाता', 'अपना एकान्त' और 'तलाश' आदि कहानियों में उद्‌घाटित हुए हैं।

3.2.2.1 प्रेम संकल्पना

पुरानी कहानियों में प्रेम-कहानियों का एक ऐसा दौर चला था, जहाँ प्रेम को मानवीय धरातल से उठाकर कहानीकारों ने दैवी और अलौकिक वस्तु बना दिया था। प्रेम एक सूक्ष्म सी सत्ता रह गयी थी। जैसे उसका इस धरती से, व्यक्ति की व्यावहारिक ज़िन्दगी से कोई मतलब न हो। केवल आत्मिक, अलौकिक प्रेम अमर रह गया था। पुरानी कहानियों के चरित्र व्यावहारिक दुनिया की समस्याओं से अल्पित, इसी प्रेम की प्राप्ति के पीछे दौड़ते रहे। यहाँ जहाँ शरीर गौण समझा जाता रहा था और केवल आत्मा का महत्व था। उन पुरानी कहानियों के प्रेमी और प्रेमिका इसी आत्मिक प्रेम का नाम लेकर जीते हुए शरीर को गौण और आत्मा को अमर मानकर किसी अन्य से विवाह हो जाने पर भी आत्मा से एक-दूसरे को चाहते रहने का दावा करते थे। लेकिन सच्चाई तो यह है कि, ये प्रेमी और प्रेमिका इन पुरानी कहानियों में कभी अपने सच्चे रूप में अभिव्यक्ति नहीं हो पाये। ये आये उस रूप में जिस रूप में लेखक उन्हें हमारे सामने लाना चाहता था - महान और आदर्श रूप में। इनके असली रूप पर महानता और आदर्श का यह लबादा लेखक द्वारा

पहनाया गया था। इस प्रेम का स्तर वायवी रहा। प्रत्यक्ष व्यावहारिक जिन्दगी में नहीं उतर पाया। वह केवल शब्दों तक सीमित रह गया था। कमलेश्वर ने 'प्रेमिका' कहानी में इन चरित्रों के वास्तविक रूप और उनके आत्मिक प्रेम के असली रूप को हलके व्यंग्य के स्तर पर उद्‌घाटित किया है। पुराने कहानीकारों ने जिसे अमर और आत्मिक प्रेम कहा था वह वास्तव में आयु के नाजुक मोड़ पर आया हुआ भावावेश का उफान मात्र होता है। पूर्ववर्ती सुनी-सुनायी प्रेम-कहानियों के आदर्शों और महानता की बातें सुन प्रेमी और प्रेमिका भी अपने भावावेशों को अमर प्रेम मानने लगते हैं। उनके लिए जान देने की कसमें खाने लगते हैं। जबकि विरोध का छोटा सा झोंका भी यह प्रेम सह नहीं पाता। प्रेम अमरता और जान देने का दावा करनेवाली कमला बड़े भाई की एक डाँट पर उस प्यार से इनकार कर देती है और भाई को सूचना देने वाले रतन के पत्र में अपने प्रेमी वीरेन्द्र को भला-बुरा कहकर उससे नफरत करने की बात कहने लगती है। पुराने कहानीकारों द्वारा लादे गये प्लैटौनिक प्रेम की असलियत यहाँ प्रकट हुई है। बड़े भाई और रतन से अपने प्रेमी वीरेन्द्र की बुराई करनेवाली कमला खुद उसके पात्र में जान देने की बात कहती है। कमला जैसे लोग भावनाओं के उफान को अमर प्रेम का नाम देते हैं, जबकि वास्तव में वे प्रेम का अर्थ भी नहीं जानते है। इस प्रकार कमला आत्मिक प्रेम करनेवाली असाधारण चरित्र नहीं हैं, बल्कि एक अत्यन्त साधारण लड़की है जो केवल आकर्षण को प्रेम का नाम दे बैठी है। उसके द्वारा लिखे गए तीनों पत्र इस

बात का प्रमाण हैं कि वह हर जगह अपने आपको सुरक्षित रखना चाहती है और अपनी सफाई में अपराध को दूसरे के सिर थोपती है। इसके लिए बड़े चालाकी भरे पत्र लिखती है। उस का हर पत्र यहाँ तक कि प्रेमी को लिखा गया पत्र भी उसके अमर प्रेम को अभिव्यक्ति नहीं करते, बल्कि उसकी व्यावहारिकता को ही अधिक प्रकट करते हैं। असल में यह पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती एक औसत सच्चाई है कि कमला जैसे सामान्य लोग आयु के आकर्षण को प्रेम समझने लगते हैं। क्योंकि उनके सामने होती है पूर्ववर्ती प्रेम कहानियों की एक रोमानी पृष्ठभूमि जहाँ प्रेम अमरता और दूसरे लोक के धरातल को छूने लगता है। उनके भीतर प्रेम की प्राप्ति के बजाय प्रेम में फना होकर अमरता की प्राप्ति का अधिक आकर्षण में डूबा उनका मन सामाजिक परिवेश के दबाव की सच्चाई को नहीं जानता। किन्तु जब उनके इस रोमानी भावबोध को यथार्थ का धक्का लगता है, तब वह उनके मन की सच्ची स्थिति होने के बावजूद वे इसे स्वीकार नहीं कर पाते। सच्चाई का आघात उन्हें व्यवहार की धरती पर उतार देता है। तब वे अपनी भावात्मक दुनिया और व्यावहारिक दुनिया के बीच जोड़-तोड़ कर अपने आपको सुरक्षित रखने के प्रयासों में लग जाते हैं। 'पुरानी कहानी' में वर्णित प्रेम जब समाज के व्यावहारिक धरातलों पर खड़ा नहीं हो पाता, तब उसमें विसंगतियों का पैदा हो जाना कितना स्वभाविक होता है। कमलेश्वर ने इस कहानी में इसी पुरानी रोमानियत का मजाक उड़ाया है।

3.2.3 नारी की स्थिति

हमारी पारिवारिक व्यवस्था में नारी का एक निश्चित स्वरूप स्थिर हो चुका था। उसके रहन-सहन, सोच-विचार, धारणाओं और व्यवहारों की सीमाएँ, निश्चित कर दी गयी थीं। शुरू से नारी इस प्रकार के वातावरण में रहते आयी थी कि, इन सीमाओं को उसने सहज रूप में स्वीकृत कर लिया था। उनके औचित्य - अनौचित्य पर उसने कभी विचार नहीं किया। हालाँकि इन परम्परागत सीमाओं में नारी का जीवन केवल बेबसी के अलावा और कुछ नहीं था। एकतर्फा मान्यताएँ उसकी जिन्दगी पर लादी गयी थीं। इसके अन्तर्गत कई कड़े बन्धन थे, जिनमें उसकी जिन्दगी जकड़ दी गयी थी। उसके जीवन की स्वाभाविक गति और विकास को रुद्ध कर दिया गया था। पुरुष को सीमातीत आज़ादी थी कि, वह चाहे जिस प्रकार का व्यवहार पत्नी के साथ करे। जबकि पत्नी को केवल उसकी दासी बने रहना था। साफ शब्दों में कहा जाये तो पति-पत्नी क्रमशः शोषक और शोषित थे। पति-पत्नी होने के बावजूद दोनों के सम्बन्धों में कोई सन्तुलन नहीं था। लम्बे समय तक नारी इस असन्तुलन से उत्पन्न अत्याचार को स्वाभाविक रूप में स्वीकार करती रही। पति के प्रति विरोध की बात उसके मन में नहीं उठी। मानसिक और बौद्धिक स्तर पर वह गलत रूढ़ियों की गुलाम बनी रही और पुरुष उस पर एकछत्र शासन करता रहा।

किन्तु इधर आधुनिकता के आगमन के बाद धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदलने लगीं। हालाँकि हमारी पारिवारिक परम्पराओं में परिवर्तन का बात को स्वीकार कर पाना मुश्किल था। आनेवाला परिवर्तन नारी की स्थिति में अनुकूल बदलाव का समर्थक था फिर भी नारी उन प्राचीन परम्पराओं में रहने की इतनी आदी हो गयी थी, कि इस परिवर्तन को स्वीकारते हुए वह खुद भी झिझक रही थी। उसका एक कदम आगे बढ़ता तो दो कदम पीछे हटते। वह रुककर पुरानी परम्पराओं का विश्लेषण करने लगती। अब तक उसे एक बँधी - बँधायी सीमाओं के अन्तर्गत आने वाली बातों पर ही सोचने की छूट थी। पति के अलावा किसी और की कल्पना उसके लिए वर्जित थी। अतः जब उसके मन में परिवर्तन होने लगा, धीरे से कोई अन्य आकर उसके मन में झाँक जाता तो वह उसके विषय में सोचने के औचित्य की खुद को ही दलीलें देने लगती। अर्थात इस परिवर्तन को नारी खुद भी मानसिक स्तर पर पूरी तरह से स्वीकार नहीं कर पा रही थी। फिर भी परिवर्तन की धीमी गति का प्रारम्भ अवश्य हो गया था।

कमलेश्वर की 'सींखचे और आत्मा की आवाज़' में क्रमशः नन्दलाल बनिये के पत्नी, भाभी और बिनती इसी स्थिति में से गुजरती हैं। सींखचे में नन्दलाल बनिये की पत्नी, पति के अत्याचारों से तंग है। उस पर इतना अत्याचार किया जाता है कि भरपेट भोजन तक वह नहीं पा सकती, पति से प्यार और दुलार तो काफी

दूर की बातें हैं। ''दिन- भर वह घर की रखवालिन के रूप में और उसके बाद लँगड़ाती, दम तोड़ती वासना की पूर्ति केलिए।''[12] घर से बाहर वह कदम तक नहीं रख पाती। सीखचों की छड़ों को पकड़कर ही वह बाहरी दुनियाँ को देखती है। उसका क्लान्त, उदास मन चमन की तरह आकर्षित होता है। उसे देख-देख उसे खुशी की अनुभूति होती है और वह चाहती है कि, बाहर निकलकर चमन के निकट जाये। किन्तु साथ ही वह चमन की ओर खिंचती हुई दृष्टि का विश्लेषण भी करती है, कि उसका देखना कोई खास मतलब नहीं रखता। वह तो चमन को बस यूं ही देख लेती है। उसकी यह स्थिति की बखस चमन की ओर देखना और फिर अपनी दृष्टि की वकालत करना, उस सूक्ष्म रूप से बदलती स्थिति की अभिव्यक्ति है, जहाँ परम्पराओं और रूढ़ियों के बोझ के नीचे दबी स्वाभाविक प्रवृत्ति, उन सबके बीच से बाहर आने का, झाँकने का प्रयास करती है। यहाँ उसके द्वारा पूर्ण विद्रोह नहीं हो पाता, पर वह अन्य पुरुष के बारे में सोचने अवश्य लगती है। यह सोचना और देखना भी अच्छा लग रहा है, इसे वह अनुभव करती है। किन्तु इसके साथ ही उसे अपनी परम्पराओं की याद आते ही अपराध का बोध भी होता है। वह तुरन्त उस खिड़की को बन्द कर देती है, जिसमें से वह चमन को देख रही थी। खिड़की का बन्द करना इस बात का सूचक है कि संस्कारवश वह अब भी उस परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पा रही है जो उसे अच्छा लगता है। यहाँ उसके मन में संघर्ष शुरू

हो गया है। लगभग यही स्थिति 'आत्मा की आवाज़' के गोपाल की पत्नी की है। पति की ज्यादतियों को वह मौन होकर सह लेती है, जैसे इनका कोई उपाय या समाधान न हो। किन्तु बिनती तक पहूँचते-पहूँचते स्थितियाँ कुछ बदलती हैं और समाधान के साथ ही साथ समस्या बरकरार रहती है।

नारी उस अत्याचार से कुछ मुक्त हुई, जिसमें उसे पूरी तरह नियन्त्रण में रख जाता था। इस स्थिति से मुक्ति पाकर नारी को अत्याचार के विरोध का अधिकार मिला। साथ ही सुशिक्षित नारी ने कुछ आज़ादी प्राप्त की। वह अपने आपको दासी नहीं, बल्कि बराबरी की जीवनसंगिनी मानती है। पति के घर में उसे सम्मानजनक स्थान प्राप्त होता है। किन्तु थोड़ी गहराई से सोचने पर वास्तविकता सामने आती है। यह बात रही है कि आधुनिक युग में नारी-स्वतन्त्र्य की घोषणाएँ की गयीं। परिवार में नारी की स्थिति में परिवर्तन आया। उसे काफी इज्जत और मान-प्रतिष्ठा मिली। साथ ही उसे स्वतन्त्रता भी मिली। पर उसकी स्वतंत्रता के ये दायरे बड़े छोटे-छोटे थे और वह भी परिवार और पति के द्वारा निश्चित किए गये थे। इन्हें निश्चित करते समय नारी की इच्छा और उस के विचारों को जानने का कोई प्रयास नहीं किया गया था। इतना परिवर्तन अवश्य हुआ कि उसके साथ पशुवत् व्यवहार बन्द हो गया। किन्तु जो स्वतन्त्रता उसे मिली, वह बड़ी सतही और बाह्य स्वरूप की थी। उसकी मूलभूत स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। किन्तु यह

सारा परिवर्तन इस प्रकार किया गया कि नारी को स्वतन्त्रता का अनुभव हो। परिवर्तन और स्वतन्त्रता का उसे भ्रम और आभास मात्र दिया गया। बिनती का पत्र इस बात का गवाह है।

बिनती पढ़ी लिखी युवती है और आधुनिक परिवार की बहू और बेटी है। ससुराल में उसे सम्मान और आज़ादी है। वह अपने आपको सुखी समझती है। क्योंकि उसे सुन्दर पति, मान-सम्मान और धन सब कुछ मिला है। अतः वह सोचती है कि जिन्दगी में सब सुख मिल गई। साथ-ही उसे यही लगता है कि पूर्व प्रेमी राजू को प्रेम करने वाली उसकी आत्मा अब इस नयी दुनिया में आने के बाद मर चुकी है। किन्तु अपनी इस धारणा के गलत होने का अहसास उसे तब होता है, जब वह खाना बनाने बैठती है। ''पर राजू ! मेरी आत्मा तुम्हारी आहट - सुन रही थी। मैं ने अपने आँसुओं को दोनों की नज़र चुराकर सुखा लिया। शायद किसी ने नहीं देखा। अगर देखा भी होगा, तो समझ नहीं पाया होगा।''[13] वास्तव में राजू को प्यार करने वाली आत्मा धन और ऐश्वर्य के बीच सुखी होने के अहसास में दब गयी थी।

असल में यहाँ नारी के साथ एक भयंकर साजिश की गयी है। नारी के सुखी जीवन के मानदण्ड़- अच्छा पति, नाम और ऐश्वर्य सम्बन्धी धारणाओं को कुछ इस प्रकार विश्लेषित किया जाता है कि नारी स्वयं भी इन्हें सच मानकर इन सबमें विश्वास करती हुई मानने लगती है कि वह सुखी और आज़ाद है। बिनती भी यही

समझती रही। किन्तु एक दिन उसकी आत्मा राजू की याद से जीवित हो उठी। किन्तु बिनती को इतनी आज़ादी नहीं थी कि वह भावों और अनुभूतियों को प्रकट कर सके। उसे तुरन्त पति और सास से अपने भावों को, अंखों में आये आँसुओं को छिपाना पड़ा। इस बिन्दु पर पहुँचकर उसे महसूस हुआ कि जंजीरें अभी टूटी नहीं हैं। बल्कि वे रूप बदलकर जरा खूबसूरत सी बनकर आयी है। शासन करने वालों ने भी सभ्यता का मुखौटा ओढ़ लिया है। उस वक्त की अपनी अनुभूतियों को यदि बिनती अपने पति के सम्मुख प्रकट कर देती तो वह तुरन्त अपने उसी परम्परागत रूप में लौट आता। अर्थात बदला हुआ बाहरी स्वरूप देखकर नारी के जीवन में परिवर्तन का आभास होता है, जबकि वास्तव में स्थिति ज्यों कि त्यों बनी रहती है।

इस प्रकार नारी - केन्द्रित 'सींखचे' और 'आत्मा की आवाज़' कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं. कि नारी स्थिति में किंचित परिवर्तन हुआ है और उसकी विचारधारा तथा धारणाओं में भी कुछ परिवर्तन आया है। वह अपने प्रति सजगता से सोचने लगी है। परम्परागत रूढ़ियों का पालन जहाँ वह पहले अपना धर्म और कर्तव्य समझकर सहज रूप में करती थी, वहाँ अब न चाहते हुए भी मजबूरी से करती है। मुक्त हौन का उसका संघर्ष चालू है। पर इसमें

उसे अधिक सफलता नहीं मिल पायी है। वह पुरुष के शासन से मुक्ति का प्रयत्न कर रही है। अतः पुरुष के साथ उसके सम्बन्ध तनाव और कटुता से युक्त है।

यहाँ पुरुष की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं आया है। अनपढ़ नन्दलाल और पढ़ा-लिखा गोपाल दोनों का पत्नी के प्रति व्यवहार एक जैसा है। दोनों ही पत्नी की स्वतन्त्रता को नकारते हैं। बिनती का पति इनसे कुछ अधिक सुधारवादी लगता है। बिनती के प्रति उसका व्यवहार नन्दलाल बनिये या गोपाल जैसा नृशंस नहीं है। वह सुशिक्षित पति है। किन्तु बिनती के पात्र से यह प्रमाणित होता है कि यह सारा परिवर्तन केवल बाहरी स्तर पर है। मानसिक स्तर पर बिनती का पति भी नन्दलाल या गोपाल से कहीं भी अलग नहीं है। पत्नी को एक सीमा तक ही वह स्वतन्त्रता दे पाता है। क्योंकि पत्नी सम्बन्धी उसकी धारणाएँ परम्परागत रूढ़वादी ही हैं। इस दृष्टि से वह उतना ही संकीर्ण है, जितना कोई भी परम्परागत पति हो सकता है। अतः नन्दलाल की पत्नी, गोपाल की पत्नी और बिनती में बाहरी रूप में कुछ परिवर्तन दिखायी देने पर भी, आधारभूत स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आ पाया है। पारिवारिक रूढ़ियों और पति संस्था के द्वारा बिनती भी उतनी ही नियन्त्रित है जितनी की नन्दलाल की पत्नी पुरुष की मानसिकता या वैचारिकता में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं आया है। पर नारी की धारणा में कुछ परिवर्तन ज़रूर दिखाई देता है। नन्दलाल की पत्नी चमन के प्रति मन में उठने वाली भावनाओं को वर्जित समझकर

अपराध का बोध करती है और स्वयं को दोषी ठहराती है। अतः चमन के सामने अपनी भावनाओं को प्रकट नहीं कर पाती। जबकि बिनती राजू अपनी भावनाओं को प्रकट नहीं कर पाती। जबकि बिनती राजू अपनी भावनाओं को अपराध नहीं समझती। नन्दलाल की पत्नी स्वयम् को अपराधी मानती है, जबकि बिनती स्वयम् को मजबूर मानती है। इसीलिए बिना अपराध बोध के अपनी भावनाओं को वह राजू पर प्रकट कर देती है।

यहाँ मानसिक और वैचारिक स्तर पर जागृत होते हुए भी बिनती परम्परागत रूढ़ विचारों का शिकार बनती है। और उन्हीं के अनुसार जीने के लिए मजबूर हो जाती है। मानसिक स्तर पर आरोपित अपराध-बोध से वह मुक्ति प्राप्त करती है। अपनी भावनाओं को प्रकट कर पाने की मानसिक स्वतन्त्रता अर्जित करती है। किन्तु व्यावहारिक स्तर पर उसकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। इस प्रकार इन कहानियों में नारी के भीतर विरोध का आभास जरूर मिलता है, किन्तु प्रत्यक्ष विद्रोह वह नहीं कर पाती। नारी के द्वारा प्रत्यक्ष विद्रोह मिलता है हमें 'जो लिखा नहीं जाता' और 'दुःखों के रास्ते' कहानियों में।

3.2.4 स्त्री का मुक्ति संघर्ष

अपने मुक्ति-संघर्ष में स्त्री आगे बढ़ती रही। पति के अनुचित नियन्त्रण से मुक्त होकर वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना का प्रयास करती रही। पुरुष ने

सदैव उसे नियन्त्रित कर उसे व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास को रोक रखा था। वह व्यक्तित्व विहीन और पुरुष की अनुगामिनी मात्र रह गयी थी। उसका कोई वचन और सत्ता या महत्व नहीं थे। इस स्थिति से उसने विद्रोह किया। उन सारी परम्परागत संस्थाओं को नकार दिया, जो उसके अस्तित्व को खुद में विलीन कर देती थी। पुरुष ने सदैव नारी को अपने नियमों के अनुसार चलने को बाध्य किया। आधुनिक युग की नारी इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर पायी। नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व से संबन्धित पुरुष से अलग जो अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध थे उसे पुरुष स्वीकार नहीं कर पाया। उसके द्वारा जो सम्बन्ध नारी को मिले उन्हीं को केवल वह स्वीकार कर पाता था। जबकि इस युग में नारी अपने अस्तित्व के प्रति सजग होने के कारण पुरुष की जिन्दगी और सम्बन्धों से अलग अपने जीवन के भी कुछ स्वतन्त्र दायरे रखती है। यहीं पर दोनों के बीच संघर्ष का निर्माण होता है। वस्तुतः आज के युग में स्त्री तथा पुरुष दोनों को अपने-अपने व्यक्तित्वों के प्रति अतिरिक्त जागरूक कर दिया है। इस नयी स्थिति में कोई भी अपने अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहता।

'जो लिखा नहीं जाता' के महेन्द्र और सुदर्शना इसी तनाव में से गुजरते हैं। महेन्द्र को जब सुदर्शना के पूर्व प्रेम का पता चलता है तो सुदर्शना के प्रति उसका भावात्मक संवेग मन्द पड़ जाता है। सुदर्शना पति के इस व्यवहार और

विचार को स्वीकार नहीं कर पाती। हालाँकि दोनों के बीच किसी प्रकार का लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। अपनी-अपनी जगह दोनों एक-दूसरे के लिए अच्छे बने रहते हैं। पर महेन्द्र के संवेगहीन मौन व्यवहार के द्वारा उसकी जो असहमति प्रकट होती है, उसमें सुदर्शना का विरोध है। क्योंकि यह असहमति सुदर्शना को पति संस्था के प्रति समर्पित पत्नी बनने को बाध्य करती है। इसीलिए सुदर्शना महेन्द्र के नियन्त्रण से मुक्त होकर पिता के घर लौट आती है।

यहाँ समस्या अपनी गहराई और सूक्ष्मता तक पहुँचती है। सुदर्शना को यों महेन्द्र से कोई शिकायत नहीं है। उसे अपने पूर्व प्रेमी चन्दर की भी याद नहीं आती और न चन्दर को पाने की कोई इच्छा उनके मन में है। न उसके छूट जाने की कसक है। महेन्द्र की नाराज़गी यदि सुदर्शना के प्रति चन्दर को लेकर है तो, सुदर्शना की नाराज़ी महेन्द्र के इस रूढ़ संकीर्ण दृष्टिकोण को लेकर है। " देखो, सब- कुछ सबसे नहीं कहा जा सकता। इतना खुलकर जिन्दगी में नहीं रहा जा सकता। कुछ खूबसूरत फरेब शायद ज़रूरी होते हैं...।"[14] महेन्द्र को छोड़कर चले जाने का सुदर्शना का निर्णय यह नहीं है कि वह अब जाकर चन्दर से जुड़ जायेगी, बल्कि सिर्फ यह है कि वह महेन्द्र से असहमत है। चन्दर जब सुदर्शना के सामने पुनः एक बार जुड़ने का प्रस्ताव रखता है, तो सुदर्शना अस्वीकार कर देती है। यह स्पष्ट

करती है कि सुदर्शना और महेन्द्र के बीच तनाव का कारण तीसरे आदमी के रूप में चन्दर नहीं है।

यहाँ सुदर्शना जिस प्रकार पति संस्था के अनुचित नियन्त्रण से अपने अस्तित्व को स्वतन्त्र रखना चाहते हैं, उसी प्रकार प्रेम और प्रेमी के भी रूढ़ रूप से अपने आपको मुक्त रखना चाहती है। विवाह से पूर्व उसने जिस चन्दर के साथ जुड़ने के स्वप्न देखे थे, उसी को पूरा करने का अवसर उसे तब मिला, जब वह महेन्द्र से अलग हो गयी। किन्तु फिर भी चन्दर से जुड़ने की कोई इच्छा उसके मन में नहीं है, क्योंकि वह जानती है कि अन्ततः चन्दर के साथ जुड़कर भी स्थिति वही रह जायेगी जिससे वह अपने आपको बचाना चाहती है। वह उन सारी परम्परागत संस्थाओं को नकार देती है, जो उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को नियन्त्रित करना चाहती है। इस प्रकार 'जो लिखा नहीं जाता' कहानी तार्किक स्तर पर समस्या को प्रस्तुत करती है। इसमें संस्थाओं से बाहर रहकर समस्या को प्रस्तुत किया गया है। अन्त में कहानी रुक जाने का आभास देती है। लगता है स्त्री - पुरुष सम्बन्ध रूद्ध हो चुके हैं। किन्तु इस दृष्टि से 'दुःखों के रास्ते' सम्भावना की कहानी लगती है। यहाँ संस्थाओं में रहकर उन्हीं के बीच से समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है। हालाँकि इस कहानी में भी समाधान नहीं है। पर समाधान ढूँढने की प्रक्रिया जारी है।

आधुनिक युग में व्यक्ति खण्डित व्यक्तित्व को लेकर जीने के लिए अभिशापित है। अपूर्णता और अधूरे रह जाने का तीव्र बोध उसके भीतर उभर रहा

है। वह पूर्णता प्राप्त करने के लिए छटपटा रहा है। किन्तु ट्रेजेडी यह है कि उसे पूर्णता कहीं नहीं मिलती। उसे ऐसा कोई अंश नहीं मिलता, जिससे जुड़कर वह पूर्णता की अनुभूति कर सके। दूसरी समस्या यह है कि पूर्णता के लिये किसी से जुड़ना ज़रूरी है। जब दो व्यक्ति स्त्री और पुरुष अपनी नैसर्गिक आवश्यकता के कारण जुड़ते हैं, एक स्थान पर आते है तब दोनों में से किसी एक का समर्पित होना ज़रूरी हो जाता है। समर्पण का मतलब है अपने अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता को दूसरे में विलीन कर देना। स्त्री ने इतनी स्वतन्त्रता आज प्राप्त कर ली है कि वह अपने जीवन का निर्णय स्वयं ले। पर आधुनिक स्थितियाँ बेहद जटिल होती जा रही हैं। व्यक्ति के मानसिक स्तर पर इन स्थितियों का ऐसा दबाव और तनाव पड़ रहा है कि खुद उसके द्वारा लिया गया निर्णय भी आगे चलकर स्त्री को मान्य नहीं रह पाता। तब स्त्री फिर अपना निर्णय बदलती है। दूसरे पुरुष की खोज करती है। पुराने सम्बन्ध को तोड़कर नये सिरे से जिन्दगी शुरू करती है। दूसरे पुरुष की तलाश खत्म होने पर वह सोचती है कि उसे उसका प्राप्त मिल गया है। पर पूर्व-सम्बन्ध समाप्त कर जब वह नये सम्बन्ध स्थापित करती है तो लगता है कि निर्णय बदलने पर भी स्थिति नहीं बदलती है। अधूरापन खत्म नहीं हुआ है। उस पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हुई है।

आज के लेखक को कहानियाँ वहाँ मिलती है जहाँ सम्बन्ध सन्दर्भ टूट और छूट रहे हैं, जहाँ वह उन्हें अस्वीकार कर रहा है या जहाँ इनके नये बनते हुए

रूपों को टटोल रहा है- घटना और घटित के निर्णायक तनाव-क्षण में, घटना की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि या 'सिटुएशन' की सम्पूर्णता में, जिसमें होकर वह अधिक गहराई और यातना से गुज़रता है। 'दुःखों के रास्ते' की ललिता समस्या के इसी कोण को उभारकर यातना से गुज़रती है। अपनी जिन्दगी में परिवर्तन के बावजूद वह दुःखों के रास्ते से मुक्त नहीं हो पायी है। अपने पहले पति बलराज के साथ उसने जिन्दगी का लम्बा रास्ता तय किया है। फिर भी बलराज से पूर्णतया जुड़ नहीं पायी। वह सदैव बलराज के प्रति असन्तुष्ट रही। अतः जब वीरेन्द्र उसकी जिन्दगी में आया तो ललिता को लगा कि वीरेन्द्र में वह पूर्णत्व को प्राप्त कर सकेगी। अतः बलराज से मुक्त हो उसने वीरेन्द्र से विवाह कर लिया। पर वह वीरेन्द्र में भी पूर्णत्व को प्राप्त नहीं कर सकी। वीरेन्द्र से जुड़कर भी वह अधूरी ही रही। कहानी की एक विशेषता यह है कि यहाँ सारे निर्णय ललिता के द्वारा लिये जाते हैं, बलराज या वीरेन्द्र द्वारा नहीं। ललिता यहाँ पुरुष के आधिपत्य से पूर्ण मुक्त है, अपने आप में बिलकुल स्वतन्त्र है। किन्तु मुक्त और स्वतन्त्र होते हुए भी ललिता अपना प्राप्य नहीं पा सकी। अन्त में वह फिर सतायी हुई और सन्तुष्ट है। मानसिक स्तर पर वह भूतकाल से पूरी तरह मुक्त भी नहीं हो पायी है। बलराज से पूर्णतया कटकर वीरेन्द्र से पूर्णतया जुड़ पाना उसके लिए सम्भव नहीं हो सका है। परिणामस्वरूप हर एक अपनी जगह आधा-अधूरा है।

अपने को स्वीकार करते हुए दूसरों को स्वीकार न कर पाना ही सबसे बड़ी विड़म्बना है। मगर इससे भी बड़ी विड़म्बना यह है कि हम दूसरे को न तो पूरी तरह स्वीकार कर पाते हैं, न पूरी तरह अस्वीकार। इस स्वीकार और अस्वीकार के बीच एक भयानक छटपटाहट है, और यही आज के स्त्री-पुरुष की नियति है। इस प्रकार इस कहानी में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के उस मोड़ को विश्लेषित किया गया है जहाँ स्त्री-पुरुष के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो चुकी है। निर्णय के अधिकार उससे अपने हाथ में ले लिये हैं। पुरुष उसके हर निर्णय को स्वीकारता है। किन्तु साथ ही यह यथार्थ भी उद्‌घाटित हुआ है कि सारा नियन्त्रण और शक्ति स्त्री के हाथों में होने के बावजूद उसका संघर्ष खत्म नहीं हुआ है। वह इच्छित स्थिति को प्राप्त नहीं कर पायी है। अधूरी और खण्डित रहना उसकी नियति है। अपने व्यक्तित्व को काफी समर्थ बना लेने पर भी अभी पति संस्था को स्वीकृत करने की मजबूरी से वह मुक्त नहीं हो पायी। क्योंकि अभी हमारे संस्कार पारिवारिक व्यवस्था और विवाह-संस्था में आमूल परिवर्तन नहीं हो पाया है। अतः नारी और पुरुष इन अनिवार्य विसंगतियों के बीच जाने को मजबूर हैं। यहाँ अधूरेपन का बोध केवल ललिता तक सीमित रह गया और समस्या सम्बन्ध-विच्छेद तथा दूसरे विवाह के सतही धरातल तक संकुचित होकर रह गयी है। इसे गहराई, सूक्ष्मता और तीव्रता मिली है 'अपना एकान्त' कहानी में।

'अपना एकांत' में सोम और हंसा ऐसी दो अर्द्ध इकाइयाँ हैं जो परस्पर जुड़कर एक इकाई का रूप धारण करती हैं। साथ ही अपने भीतर पूर्णता का बोध भी। यहाँ सोम और हंसा के बीच किसी तरह का कोई सामाजिक या पारिवारिक रिश्ता नहीं है। वे पति-पत्नी भी नहीं हैं और रूढ़ अर्थों में प्रेमी-प्रेमिका भी नहीं हैं। फिर भी दोनों के बीच कोई ऐसा रिश्ता है जो इन सब से अधिक घनिष्ट है। इसीलिए सोम की मृत्यु की ठंड़ी प्रतिक्रिया के बावजूद हंसा कहती है कि अब मैं पढा नहीं पाऊँगी। पढ़ाने का मतलब होता हैं अपने आपको, अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना। सोम की मृत्यु से हंसा को अपने व्यक्तित्व की पूर्णता के खत्म होने की अनुभूति होती हैं। इस अपूर्ण व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति करना उसके लिए कठिन है। ''सोम चलते वक्त मेरी वेणी माँग लेता था। बस, इसके अलावा उसने कभी कुछ नहीं माँगा। उसका यह बचपन मैं कभी नहीं समझ पाई। आज मैं कभी वेणी लगाए हुए नहीं लौट पाऊँगी ।''[15] यहाँ सोम और हंसा का रिश्ता सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों के सीमित दायरों से परे अपने छूटे हुए अंश से जुड़ने का रिश्ता है। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के प्रचलित दायरे से हटकर हंसा सोम में अपने पूर्णत्व की अनुभूति करती है। पहली ही मुलाकात में सोम उसे यह अनुभूति दे जाता है। गुलमोहर के पेड़ के पास खड़ी हंसा मराठी में अपने सहेलियों को अपनी बात समझाने की कोशिश करती है कि अधिक गुलमोहर के खिलने का मतलब है खूब बारिश होगी। सहेलियों ने तो उसकी उपेक्षा कर दी, पर कुछ दूर खड़ा लखनऊ का

सोम उसकी बात को समझने का प्रयत्न कर रहा था। उसने हंसा की बात का समर्थन कर दिया। हंसा को महसूस होता है कि अकेला सोम ही उसकी बात को समझ रहा है। यहीं से वह सोम में अपने अधूरेपन को खत्म होता हुआ महसूस करती है। इसे व्यक्त करने के लिए लेखक एक नये स्तर से बात उठाता है। सोम की मृत्यु की घटना जिस तरह से बयान की गयी है, उसमें हंसा के बजाय सोम के अकेलेपन की यातना पर बात ज्यादा केन्द्रित होती है। सोम के शव का स्वयं हर स्थान पर जाना सोम के अकेलेपन को तीव्रता से उद्घाटित करता है। क्योंकि दुनियादारी और सामाजिक दृष्टि से सोम का हंसा से कोई रिश्ता नहीं है। इसीलिए वह अपने से सम्बन्धित कोई उत्तरदायित्व हंसा पर नहीं डाल सकता। कुल मिलाकर कहानी मनुष्य के उस अस्तित्व बोध और उसके अधूरेपन से जन्मी पीड़ा की कहानी है जहाँ उसे अपना एकान्त भी नहीं मिलता। जहाँ वह एकाग्र होकर अपने से प्यार करे, अपने में रहे, जिये। इसका मतलब जिन्दगी से कट जाना नहीं है, बल्कि सही अर्थ में जिन्दगी को जीना है। इससे आधुनिक मनुष्य वंचित है। सोम और हंसा के रिश्ते में इसे व्यक्त किया गया है।

3.2.5 राजनीतिक मूल्य

जनता के जीवन में आज राजनीति दूर तक प्रवेश कर गयी हैं। जनतन्त्र में यह स्वाभाविक परिणति है। राजनीति जीवन का एक अभिन्न अंग बन गयी है। उसकी स्वतन्त्र पहचान शेष नहीं रहीं हैं। परिणामस्वरूप सरकार का हस्तक्षेप

व्यक्तिगत जीवन में बहुत दूर तक बढ़ गया है। राजनीति के साथ हमारे जीवन का सम्बन्ध इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि हमारे जीवन के कई निर्णय राजनीति पर आधारित होते हैं। यदि हमारे शासन कर्त्ताओं ने दिये हुए वचनों को पूरा करने की कोशिश की होती, यदि हमारा जनतन्त्र एक आदर्श जनतन्त्र बन पाता, तो राजनीति का जनता के साथ यह घनिष्ट सम्बन्ध आम आदमी के लिए वरदान बन जाता। पर आज व्यक्ति राजनीति के साथ इस घनिष्ट सम्बन्ध के अभिशाप को धो रहा है। क्योंकि हमारी शासन-प्रणाली अपने मूल रूप में न जनतान्त्रिक रही है और न हमारे शासनकर्ता जनसेवक बन पाये हैं। नेता आज तानाशाह बन बैठे हैं और जनतन्त्र के नकाब में तानाशाही पनप रही है। हर देश की अपनी राजनीति तो होती ही है, पर जहाँ दलगत राजनीति पूरी तरह भ्रष्ट स्वरूप धारण कर ले वहाँ आम आदमी की जिन्दगी को दारुण परिणति मिलती है। राजनीति या जनतन्त्र को चलाने के लिए एक शासन यन्त्रणा अनिवार्य होती है। हमारे यहाँ दलगत राजनीति और नेताओं की घोर स्वार्थी वृत्ति और पद-लोलुपता आदि के कारण इस शासन-यन्त्रणा ने इतना विकृत स्वरूप धारण कर लिया है कि दुर्भाग्य से भ्रष्टाचार राजनीति का दूसरा नाम सिद्ध हो रहा है। आम आदमी कदम-कदम पर राजनीति के हस्तक्षेप को महसूस करता है। जनतान्त्रिक शासन व्यवस्था उसकी जिन्दगी में रास्तों की उलझनों को दूर करने के स्थान पर बढ़ा रही है। अतः इस जनतन्त्र से उसकी आस्था खत्म होती जा रही है। अपनी आजादी को धूल-मिट्टी होते देख वह हताश हो जाता है। अन्त

में केवल कुछ भी न कर पाने की मजबूरी का बोध शेष रह जाता है। कमलेश्वर की संवेदनशीलता राजनीति के संदर्भों को ग्रहण करती हुई अपनी कहानियों में राजनीति से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने किसी खास पार्टी का या विचारधारा का समर्थन या विरोध किया है। कमलेश्वर की कहानियों में राजनीति से संबंधित दो कोण मिलते हैं।

पहले कोण में निम्नलिखित कहानियाँ आती हैं-

1. जिन्दा मुर्दे (जिन्दा मुर्दे)
2. लाश (बयान)
3. अपने अजनबी देश में (जिन्दा मुर्दे)
4. लड़ाई (बयान)
5. रातें (बयान)
6. जार्ज पंचम की नाक (जिन्दा मुर्दे) आदि कहानियाँ प्रत्यक्ष राजनीतिक संदर्भों की कहानियाँ हैं, जिसमें शासन तन्त्र के स्वरूप को विश्लेषित किया गया है।

उनके दूसरे कोण में निम्नलिखित कहानियाँ आती हैं-

1. धूल उड़ जाती है (राजा निरबंसिया)
2. भटके हुए लोग (कस्बे का आदमी)
3. बेकार आदमी (कस्बे का आदमी)
4. अपने देश के लोग (जिन्दा मुर्दे)
5. बयान (मेरी प्रिय कहानियाँ)

6. जोखिम (बयान) में प्रकट हुआ है जिसमें राजनीति का आम आदमी की जिन्दगी पर प्रभाव उद्‌घाटित किया गया है।

सरकार द्वारा स्थापित व्यवस्था ही वास्तव में राज्य की नीति होती है। यह राजनीति जनतन्त्र में जनता के लिए होती है। सामान्य जनता के पक्ष में यह कार्य करती है। उनके जीवन को सुखी समृद्ध करने की प्रवृत्ति उसके मूल में हुआ करती है। जनता अपने में से ही कुछ व्यक्तियों को चुनकर अपने प्रतिनिधि के रूप में शासन की बागडोर सम्भालने के लिए निश्चित करती हैं, इस अपेक्षा और आस्था सहित कि वे उन्हीं में से हैं, अतः उनके दुःख-दर्द को जानते पहचानते हैं और सत्ता की शक्ति के द्वारा उन्हें दूर करेंगे। किन्तु दुर्भाग्य से जनता की एक भी अपेक्षा पूरी नहीं हो पाती। चुने हुए व्यक्ति पद पर पहुँचकर सामान्य जन नहीं रहते, वे विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति बन जाते हैं, परिणामस्वरूप जनतन्त्र की सत्ता को ये अपने स्वार्थ के अनुरूप तोड़ते-मरोड़ते और रूप देते हैं। इन नेताओं और पदाधिकारियों द्वारा शासन यन्त्रणा का स्वरूप इतना विकृत हो जाता है कि जनतन्त्र जैसे एक श्रेष्ठ राजनीतिक मूल्य की भी कोई महत्ता नहीं रह जाती। कमलेश्वर की 'जिन्दा मुर्दे' कहानी शासन तंत्र के उस षड़यन्त्र को उद्‌घाटित करती है, जिसमें शासक अपनी महत्वाकांक्षा के लिये राष्ट्रप्रेमी के नाम पर पूरे देश को, हर महकमे को खपाता है। देश की शक्ति, जनता की प्रतिभा और योग्यता सब कुछ उस सत्ताधारी की अभिलाषा की भेंट चढ़ जाता है, किन्तु यह सब होता है मातृभूमि की रक्षा के नाम पर। जनता यही समझती

है कि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए सब कुछ कर रही है। इस प्रकार सारा राष्ट्र एक व्यक्ति की इच्छा पूर्ति का साधन बन कर रह जाता है। लोगों के मन में राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावनाओं से खिलवाड किया जाता है। सदेर-पाकिस्तान की दिल्ली पर आक्रमण करने की महत्वाकाँक्षा के लिए देश के सारे फोटोग्राफर्स, कवि, कलाकार, पत्रकार आदि लोग तैनात किये गये। उनकी इच्छापूर्ति के लिए देश का सारा कारोबार ठप्प पड़ गया। जनसामान्य की जिन्दगी का क्रम टूट गया और कई लोगों की जिन्दगी तबाह हो गयी। सारी यन्त्रणा और योजनाएँ इस प्रकार कार्यान्वित होती है कि दो कार्यों के बीच किसी प्रकार का उपयुक्त क्रम या संगति नहीं बैठ पाती। विसंगतियों के बीच काम करते - करते देश का संवेदनशील आम आदमी मशीन का पुर्जा मात्र बनकर रह जाता है। इतने यन्त्रवत् ढंग से वह कार्य करता है कि अपने काम को अंजाम देने के अलावा परिवेश या परिस्थितियों की अन्य कई चेतना उसमें शेष नहीं रह जाती। कार्य के आसपास के संदर्भ और अर्थ उसकी चेतना से परे रह जाते हैं। फोटोग्राफर असगरमियाँ को जब मृत अफसर का फोटो लेने को कहा जाता है तो वह मृत और जीवित के अहसास को भूलकर हर रोज के रूटिन के मुताबिक यन्त्रवत् ढंग से उस मृतक को 'रेड़ी, वण, टू, थ्री समाइल प्लीज' कहकर फोटो खींचता है। इस प्रकार कहानी एक साथ - दो संकेत देती चलती है। एक ओर प्रत्यक्ष राजनीतिक संदर्भ है जहाँ शासक अपनी पद पिपासा के लिये सारे राष्ट्र को साधन मात्र बना देता है। इसकी परिणति स्वरूप

संवेदनशील व्यक्ति अहसासहीन यन्त्र रह जाता है। इस सारी यन्त्रणा में कहीं भी उसके व्यक्तित्व का उचित विसर्जन नहीं होने पाता। उसके अस्तित्व को कोई सार्थक वजन नहीं मिल पाता। देश के प्रति अपनी समर्पित भावनाओं और शासकों की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के बीच उनका व्यक्तित्व हास्यास्पद बनता चला जाता है।

सदरे पाकिस्तान जैसे शासकों की महत्वाकाँक्षाओं की परिणति के स्वरूप जनतन्त्र धीरे-धीरे लाश में परिवर्तित होने लगता है। जनतन्त्र की आत्मा खत्म हो जाती है। सत्ताधारीपक्ष और विरोधीपक्ष दोनों भी अपने-अपने ढंग से जनतन्त्र का उपयोग और खींचातानी करते हैं। जनतन्त्र की जनरूपी शक्ति का उपयोग सीमित स्वार्थों की पूर्ति के लिए होने लगता है। सारी यन्त्रणा जिसको नाम लोकतन्त्र का दिया जाता है वह वास्तव में जनतन्त्र की हत्या करती है। 'लाश' कहानी में कमलेश्वर ने इसी तथ्य का उद्‌घाटन किया है। जनतात्रिक देश में जुलूस और नारे अपने-आप में जनशक्ति का प्रदर्शन और सत्ता धारियों के लिए चेतावनी होती है। किन्तु आज इन कार्यों के आन्तरिक अर्थ और उपयोग बिलकुल ही बदल गये हैं। आज भी जुलूस निकलते हैं, नारे लगाये जाते हैं और इस प्रकार जनता के अधिकारों की ओर ध्यान खींचने का प्रयास किया जाता है। किन्तु अधिकारों और शक्ति प्रदर्शन के नाम पर होनेवाले ये आयोजन वास्तव में नेताओं के अपने स्वार्थ के लिये किये गये आयोजन होते हैं। जुलूस के दौरान होनेवाले दंगे में केवल

व्यक्तियों की हत्या नहीं होती है क्योंकि इन कार्यों को जिन सन्दर्भों और अर्थों में किया जाता है वे लोकतान्त्रिक मूल्यों के विरोधी होते हैं। जनता अपनी माँगों को पूरी करवाने के लिये जुलूस निकालती है, पर जुलूस का कार्यक्रम आयोजन तथा संचालन विरोधी पक्ष के नेता कान्तिलाल करते हैं, किन्तु जब जुलूस में दंगा हो जाता है और एक लाश गिरती है तो कुछ लोगों को लगता है कि मुख्यमंत्री की मृत्यु हो गयी और कुछ लोगों का अनुमान था कि विरोधी पक्ष के नेता कान्तिलाल की मृत्यु हो गयी। बाद में पाया गया कि दोनों भी एकदम सही-सलामत और सुरक्षित है इतना ही नहीं, दोनों एक दूसरे को मृत और स्वयम् को जीवित घोषित कर रहे हैं। वास्तव में दोनों ही जीवित थे। न कभी सत्ता खत्म होती है न उसका विरोध खत्म होता है। यदि सत्ता सही ढंग से कार्य करने लगे तो या फिर सत्ता का विरोध - सही ढंग से होने लगे तो स्वस्थ जनतन्त्र का पोषण हो सकता है। पर यहाँ-तो सत्ता और विरोध के बीच व्यक्तिगत स्वार्थ को लेकर चलने वाली खींचातानी में जनतन्त्र की लाश ही हाथ आती है, जनतन्त्र की यानी सामान्यजन की। ''घटित हुए हादसे का मुआयना करने केलिए मुख्यमंत्री भी निकल चुके थे। उन्होंने यह सुना तो सकपकाए हुए पहूँचे। उन्होंने गौर से लाश को देखा और मुस्कराते हुए बोले- यह मेरा नहीं है।''[16] 'लाश' कहानी में सत्ताधारी संगठन और विरोधपक्ष की कार्यवाही के द्वंद्व में मरते सामान्य व्यक्ति के चित्रण से लेखक व्यवस्था के प्रति व्यंग्य तीखा करता है।

मुख्यमंत्री अपनी जगह तटस्थ और निश्चित हैं। उन्हें इतने बड़े जुलूस को लेकर सिवा इसके कोई चिन्ता नहीं है कि कोई गड़बड़ी न हो। जनता की माँगों से उनका कोई लेना-देना नहीं है। जुलूस के औचित्य पर उन्हें कुछ नहीं सोचना है। इधर कान्तिलाल भी दुहरा व्यवहार करते हैं। एक और वे मुख्यमंत्री के मित्र हैं, उन्हें सदैव मिलने जाते हैं, पर जुलूस वाले दिन वे अपना जाना स्थगित कर देते हैं। यह स्थूल व्यवहार और बाह्याडम्बर कहीं भी उनके किसी महत्वपूर्ण सिद्धान्तों या ध्येयों को सिद्ध नहीं करता। उस समय तो कान्तिलाल की सच्चाई और स्पष्ट रूप में सामने आती है, जब लाश अपनी होने की बात सुन वे हैरान रह जाते हैं और फिर जोशभरे स्वर में उसे मुख्यमंत्री को घोषित करते हैं। उनका यह रवैया इस बात को स्पष्ट करता है कि उन्हें भी जनता से अधिक विरोधी-नेता के रूप में अपने पद की चिन्ता है। अपने इस रूप और अस्तित्व को वे टिकाये रखना चाहते हैं। मोर्चे के रूप में संगठित जनशक्ति भगदड़ होते ही अन्धी भीड़ में बदल जाती है। वह शक्ति नहीं रह जाती। केवल दिशाहीन भीड़ बन जाती है। जो न सोच-समझ पाने लायक रह जाती है, न कुछ करने लायक। उसका विवेक खत्म हो जाता है। यह दिशाहीन भीड़ ही जनतन्त्र की लाश है।

'जिन्दा मुर्दे' में यदि लेखक ने शासकों की पद-लिप्सा और महत्वाकाँक्षा को रेखांकित किया और उसमें आम आदमी की परिणति को उद्‌घाटित किया है तो

'लाश' में जनतन्त्र की मृत्यु को अभिव्यक्त किया है। जब शासक निरंकुश हो जाता है और जनता उसके इशारों पर चलने वाला यन्त्र बन जाती है, तभी जनतन्त्र मृत्यु की ओर कदम बढ़ाने लगता है। 'लाश' में जनतन्त्र लाश के रूप में इसीलिए परिवर्तित हुआ क्योंकि सदेर - पाकिस्तान ने अपनी महत्वाकांक्षा के लिये राष्ट्र को साधन बना रखा था। जनशक्ति का उपयोग अपनी इच्छापूर्ति के लिये करना शुरू कर दिया था और जनसामान्य अच्छा-बुरा, और उचित-अनुचित के, संदर्भों और परिवेश को लांघकर यन्त्र के समान कार्य करने लगा था।

यदि जनतन्त्र लाश में परिवर्तित न भी हो, यदि वह धीमी साँस लेता जीवित भी रहे, तो उसका स्वरूप बेहद विकृत हो जाता है। इस विकृत रूप के नाम पर ही जनतन्त्र के जीवित होने को घोषित किया जाता है, पर उसके भीतर जनतन्त्र की सही तस्वीर पाना असम्भव हो जाता है। इस जनतन्त्र में रह जाता है केवल भ्रष्टाचार, व्यक्तिगत स्वार्थ दूसरी ओर गरीबी और उसकी मजबूरियाँ, ये सारी अवस्थाएँ जनतन्त्र की नींव को खोखला करते हैं। 'अपने अजनबी देश में' कहानी राजनीति के क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार तथा उसके द्वारा किस प्रकार लोकतन्त्र की धज्जियाँ उड़ रही हैं इस तथ्य को उद्‌घाटित करती है। लोकसेवा और राष्ट्र सेवा के नाम पर अन्न समस्या का निराकरण करने के लिए दीवानचन्दजी अपनी फैक्टरी में फ्रिज और नेलपालिश बनाते हैं। हालाँकि ये भौतिक सुख-सुविधाओं की चीज़ें हैं।

वास्तव में पूँजिपति पूँजी के लिये इन चीज़ों को बनाते हैं, पर वे इसे लोकसेवा के रूप में प्रचारित करते हैं। उन्हीं के भाई भगवानचन्दजी उस समिति के अध्यक्ष हैं जो मकान बना रही है। उसी में से भगवानचन्दजी अपना भी मकान बनवा लेते हैं और इन्क्वायरी होने पर रिश्वत देकर छूट जाते हैं और इसी को जनतन्त्र की बुनियाद बताते हैं। हिन्दुस्तानी जनतन्त्र में बड़ी मुश्किल से वक्त काटते क्लर्क को जब गम गलत करने के लिए शराब की ज़रूरत महसूस हुई तो शहर में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करने वाले और जनता की सेवा करने वाले पुलिस ने उसकी दिक्कत दूर की और उसे शराब लाकर दी। मुआवजे के रूप में कुछ रुपये पाये। कहानी में इसी को सच्चा जनतन्त्र बताया गया है। क्लर्क भी खुश है पुलिस भी। क्योंकि यह सारा कार्य वास्तव में क्लर्क और पुलिस की गरीबी के द्वारा सम्पन्न होता है और अन्त तक पहुँचते-पहुँचते यह व्यंग्य तीखा हो जाता है, जब गरीबी को ही लोकतन्त्र की शर्त बताया जाता है। वास्तव में यहाँ लेखक ने जनतान्त्रिक मूल्यों की सारी विरोधी और विडम्बनापूर्ण स्थितियों के बीच रख दिया है। अतः जनतन्त्र की विकृत अवस्था पूरी सिद्धत के साथ व्यक्त हो पायी है। कहानी का 'मैं' जब-जब खुश होता है, पाठक तब-तब बेचैन हो जाता है, घुटने लगता है। उसके मन में आक्रोश उत्पन्न होता है। हिन्दुस्तान में जनतन्त्र की विकृत अवस्था पर ये स्थितियाँ तीखा व्यंग्य करती हैं।

यदि 'जिन्दा मुर्दे' शासकों की भ्रष्ट नीति को उद्‌घाटित करती है, तो 'लाश' इस नीति की परिणति स्वरूप मृत्यु को उद्‌घाटित करती है और 'अपने अजनबी देश में' इस लाश के उपयोग और उसके विकृत स्वरूप का चित्र पेश करती है। किन्तु यह भ्रष्टाचार केवल इस सीमा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि धीरे-धीरे वह उस चरम स्थिति तक पहुँचता है, जहाँ वह जोंक की तरह जनसामान्य को चूसने लगता है। इसमें से उस भयावह स्थिति का निर्माण होता है, जहाँ भ्रष्टाचार के संदर्भ में ऊपर से नीचे तक सारे व्यक्ति बिलकुल एक से हो जाते हैं। उन्हें अलग-अलग करके देखना सम्भव नहीं रहता। हमारे दाँये बाँये चारों और सारे शाहर में वे एक ही सूरत के व्यक्ति दिखायी देते हैं। भ्रष्टाचार के इस भयावह स्वरूप का उद्‌घाटन फैंटेसी के स्तर पर कमलेश्वर की कहानी 'लड़ाई' करती है। पूरे शहर में एक ही सूरत के लोग घूमने लगते हैं। यह स्थिति देशव्यापी भ्रष्टाचार का संकेत देती है। खजाना लूटनेवाले दोनों भाई - बड़ा भाई और छोटा भाई उन लोगों के प्रतीक हैं, जो पद द्वारा प्राप्त सुविधाओं की शक्ति के आधार पर सत्ता और पद छिन जाने के बाद भी अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहते हैं। छोटा भाई इन कार्यों में उनकी सहायता करता है, सहयोग देता है। जबकि बीच का भाई अर्थात् सामान्यजन जिन्दगी की लड़ाई लड़ते हुए जीवन और मृत्यु के संघर्ष को झेलता रहता है।

इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि जहाँ व्यक्ति अपने घर और शहर के बजाय लड़ाई के मैदान में आपको अधिक सुरक्षित महसूस करे।

शासनतन्त्र अपने आप में एक अत्यन्त सूक्ष्म लेकिन भयानक षड्यन्त्र है। इसमें उलझा हुआ व्यक्ति हर पल असुरक्षा की अनुभूति करता है।

भ्रष्ट जनतन्त्र में शासन-यन्त्रणा के द्वारा इस प्रकार की स्थितियाँ बनती चलती हैं कि जनहित के लिये किये जानेवाले कार्य जन विरोधी बन जाते हैं। जनता के धन की रक्षा केलिए इमारत बनाने का, उसे पक्की करने का निर्णय लिया जाता है। पर इस निर्णय के मूल में बड़े भाई की नियत छिपी हुई है। वह छोटे भाई को मकान बनाने का ठेका दे देता है। इमारत बाहर से एकदम पक्की बन जाती है, तो पीछे की दीवार वैसी ही छोड़ दी जाती है। दोनों भाई मिलकर जनता का धन लूटते रहते हैं। इस प्रकार शासन करने वाले अपने चेहरों पर जनसेवा का मुखौटा लगाकर अवसर की प्रतीक्षा में लगे रहते हैं।

'अपने अजनबी देश में' बड़े व्यापारी फौजी जैसे राजनीतिक बाह्य या समितियों के अध्यक्ष और पुलिस जैसे शासनतन्त्र के अन्य महकमों के अधिकारियों के भ्रष्टाचार का उद्‌घाटन हुआ। जबकि 'लड़ाई' में प्रत्यक्ष शासकों द्वारा भ्रष्ट आचरण का परदाफाश किया गया है। यहाँ आम आदमी हर क्षण असुरक्षा की अनुभूति में जीने को विवश होता है। 'अपने अजनबी देश में' वह पुलिस को पैसे देकर शराब पा सकता है, किन्तु 'लड़ाई' में उसे पाना कुछ नहीं है, केवल खोना ही है। 'अपने अजनबी देश में' वह भले ही लूटनेवालों के विरुद्ध कोई शिकायत दर्ज

नहीं कर सकता, पर लूटनेवालों को और उनकी लूट के तरीकों को तो जानता है, जबकि 'लड़ाई' में तो वह अनजान होने के कारण लूटनेवालों के पास ही लूट की शिकायत करता है।

साम्राज्यवाद में तो खैर अन्त तक शासक बदलता नहीं था। मृत्यु के बाद भी उसका ही वशंज उत्तराधिकारी के रूप में शासन करता था। अतः उसकी नीतियों में कोई अन्तर नहीं आता था। युगों तक जनता अत्याचारों को सहन करती चलती थी। पर जनतन्त्र में जनता को शासक बदलने की सुविधा, शक्ति और अधिकार प्राप्त हुए। अब निरंकुश और अत्याचारी शासक को अपने चुनाव-अधिकार द्वारा जनता जब चाहे बदल सकती है। पर यह सच्चाई भी भीतर ही भीतर एक बहुत ही बड़ा झूठ बनकर रह गयी है। क्योंकि शासक अपने शासनकाल में ही सेना और अर्थ की सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर परिवर्तन के क्षणों में इनके उपयोग द्वारा निर्णय को अपने पक्ष में कर लेता है - और हर बार शासक के रूप में पद पर आसीन होता है। हर बार परिवर्तन के अवसर पर जनता बड़ी उत्सुकता से निर्णय की प्रतीक्षा करती है कि पिछले नाम से अलग कोई दूसरा नाम सामने आयेगा पर हर बार उसे निराश होना पड़ता है। बार-बार एक ही नाम सुनना पड़ता है। एक स्थिति ऐसी भी आती है जब जनता की सारी उत्सुकता, अप्रतीक्षा और तटस्थता में बदल जाती है। क्योंकि वह पहले से ही निर्णय को जानती होती

है। कमलेश्वर की 'रातें' कहानी शासक की इसी पदलिप्सा को उद्‌घाटित करती है। सेठ एम सी दारूवाला अपनी शक्ति के बल पर शारदाबाई के घराने की चार-चार पीढ़ियों के सौन्दर्य का उपयोग करता है। पूंजीवादी प्रवृत्ति को उद्‌घाटित करने का अहसास देने वाली यह कहानी गहरे में जाकर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का संकेत करती है।

'जिन्दा मुर्दे' में भी शासक की महत्वाकाँक्षा प्रमुख है, तो वहाँ से चलकर लाश, 'अपने अजनबी देश में' 'लड़ाई' आदि में प्रत्यक्ष राजनीतिक संदर्भ के विभिन्न कोणों - लोकतन्त्र की विकृत आस्था, उसकी परिणति आदि को स्पष्ट करते हुए 'रातें' में पुनः शासक की महत्वाकांक्षा और पदलिप्सा पर कमलेश्वर बात करते हैं, पर एक बिलकुल भिन्न कोण से। 'जिन्दा मुर्दे' में सदरे पाकिस्तान अपने शासन काल में ही राष्ट्र के हर महकमे को अपनी इच्छापूर्ति का साधन बनाने के प्रयास में संलग्न है। जबकि 'रातें' में एम. सी. दारूवाला हर बार उस पद को प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा हुआ है। हर काल को अपना काल बनाने के प्रयास में है ताकि सदैव उसके द्वारा प्राप्त अधिकारों और सुखों का उपयोग किया जा सके। संसार में कितने ही क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं, एक लम्बा समय बीत जाता है, पर हम देखते हैं कि उस कुर्सी और उस पर बैठने वाला कोई नहीं है। कुर्सी प्राप्त करने की होड़ में हर बार दारूवाला आगे निकल जाता है और उसके द्वारा प्राप्त समृद्धि को भोगता है।

किसी भी शासक के काल में जनता की स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जनता ने अपनी स्थितियों को सुदृढ़ करने के लिये लोकतन्त्र की नींव डाली, अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति के लिये संघर्ष किया। उनसे मुक्ति प्राप्त कर देश में जनतन्त्र को स्थापित किया गया। यह विश्वास होने लगा कि राष्ट्र का अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित हुआ है, उसकी अपनी पहचान बनी है, और उसके व्यक्तित्व को वजन मिला है। जनतान्त्रिक शासन व्यवस्था के कारण जनता की भी एक व्यक्तित्व सम्पन्न तस्वीर उभर रही है। हम मुक्त है, और संसार के अन्य राष्ट्रों के समकक्ष हमारे देश की स्थिति है। किन्तु यह धारणा, यह अनुमान कितना अधिक गलत या यह रानी एलिजावेथ के भारत-आगमन पर सिद्ध हुआ। 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी इसी सत्य का उद्‌घाटन करती है। रानी के स्वागत में सारा देश इस तरह से व्यस्त हो गया है कि मित्र के स्थान पर वह मालिक के स्वागत की तैयारियों का अहसास देने लगता है। जार्ज पंचम के बुत की नाक के लिये सारा शासन इस कदर परेशान हो जाता है कि राष्ट्रीय स्तर पर उसकी नाक के प्रबन्ध के लिये हलचल मच जाती है। उसके लिये हमारे राष्ट्रीय नेताओं के बुत की नाकें छान डाली जाती हैं, पर वे सारी नाकें उस बुत के लिये बड़ी लगती हैं और तब जिन्दा नाक लगाकर मसला हल किया जाता है। अर्थात किसी जिन्दा हिन्दुस्तानी की नाक उस मूर्ति की नाक के लिए काट ली जाती है और वह उस पर फिट बैठती है। राष्ट्रीय नेताओं की नाकें लगाने की कोशिशें असफल हो जाती हैं। किसी भी राष्ट्रीय

नेता की नाक का बड़ा होना इस बात का प्रमाण है कि ये सारे नेता जार्ज पंचम की तुलना में अधिक व्यक्तित्व संपन्न और महान लोग थे। इनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था। मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए सदैव सन्नद्ध राष्ट्रप्रेमी और जनसामान्य के हितों की रक्षा के लिए प्रयासरत ये नेता हर दृष्टि से बड़े थे। राजनीतिक दृष्टि से परतन्त्र और गुलामी की स्थिति में भी इन्होंने अपने अर्न्तबाह्य व्यक्तित्व को और अपनी मानसिकता को स्वतन्त्र रखा था। वे किसी भी रूप में कभी अंग्रेज़ों के दास नहीं बने और इन्हीं नेताओं के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हमें आज़ादी मिली। पर यह सचमुच आश्चर्य जनक सच्चाई है कि स्वतंत्र देश के शासक मानसिक रूप में अंग्रेज़ों के गुलाम ही बने रहे। उनके शासन के मानसिक प्रभाव से वे मुक्त नहीं हो सके। परिणामस्वरूप रानी का स्वागत एक मित्र की तरह न होकर एक शासक के समान हुआ। जिस दिन जार्ज पंचम की बुत को नाक लगायी गयी उस दिन समाचार पत्रों में यही समाचार प्रमुख रूप में प्रकाशित हुआ। उस दिन देश के भीतर देश से संबधित किसी घटना का उल्लेख कहीं भी नहीं किया गया। अर्थात् हमारे अपने देश की किसी भी घटना से अधिक महत्व हमने जार्ज पंचम की नाक को दिया है।

ये सारी घटनाएँ इस तथ्य को उद्घाटित करती हैं कि आज़ादी के बाद भी मानसिक स्तर पर देश का और देश की जनता का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित

नहीं हो पाया है। गुलामी की प्रवृत्ति से मानसिक स्तर पर देश मुक्त नहीं हो सका। कहानी प्रमुख रूप से शासकों की मानसिक गुलामी पर केन्द्रित हुई है। 'जिन्दा मुर्दे', 'लाश', 'अपने अजनबी देश में' और 'लड़ाई' आदि कहानियों में हमने देखा कि शासक अपनी महत्वाकांक्षाओं और पदलिप्सा के लिये अपने ढंग से जनतन्त्र को चलाते हैं। प्रजा निरीह होती जाती है। अभावों और गरीबी को सहकर भी व्यक्ति स्वतन्त्रता की रक्षा करना चाहता है। गरीबी को वह सह सकता है, पर परतन्त्रता को नहीं। इस प्रकार 'जिन्दा मुर्दे' से होकर 'लाश', 'अपने अजनबी देश में', 'लड़ाई' 'रातें' और 'जार्जा पंचम की नाक' तक कहानियों की यात्रा क्रमशः हिन्दुस्तानी जनतन्त्र में शासकों की प्रवृत्तियाँ जनतन्त्र की विकृत स्थिति और भ्रष्टाचार से होकर प्रस्तुत कहानी में तथ्य के रु-ब-रू हमें खडा करती हैं, जहाँ हम जान लें कि हमारा यह विश्वास एक भ्रम और झूठ है कि हम स्वतंत्र हैं। राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता हमें जरूर मिली पर शासकों की मानसिक दासता फिर भी बनी रही है और जनता के लिये स्वतंत्रता केवल सत्ता का हस्तांतरण मात्र रह गयी है।

प्रत्यक्ष राजनीतिक संदर्भो का आम आदमी की ज़िंदगी पर प्रभाव पडना अनिवार्य था। देश के विभाजन से लेकर अब तक राजनीति निरंतर आम आदमी के जीवन को प्रभावित करती आयी है। इस स्थिति से संबंधित कमलेश्वर की कुछ कहानियाँ उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं। भारतीय जनता को स्वतंत्रता के बाद

सबसे पहले राजनीति ने देश-विभाजन के रूप में प्रभावित किया। कमलेश्वर की धूल राजा निरबंसिया उड़ जाती है तथा 'भटके हुए लोग' कहानियाँ विभाजन के संदर्भ में आम आदमी की परिणति को दो कोणों से उद्‌घाटित करती हैं।

3.2.6 विभाजन से उत्पन्न स्थिति

स्वतंत्रता के बाद हिंदुस्तान का विभाजन हुआ और हिंदु तथा मुसलमानों के लिए अपने-अपने अलग देश बने। 'अपने देश' के निर्माण के पीछे शोषण से मुक्ति और विकास के उद्देश्य उस रूप में पूरे नहीं हुए, जिस रूप में जनता इन सबके बारे में सोच रही थी। मुट्‌ठी भर लोगों की कूटनीति के पीछे विभाजन का निर्णय लिया गया था। जनता ने भी क्षणिक भावावेग में इसे मान लिया था। लेकिन विभाजन के बाद जिन हालातों के बीच से उसे गुजरना पड़ा उन्हें भोगते और झेलते हुए सामान्यजन ने महसूस किया कि विभाजन का निर्णय या। कोई भी राजनीतिक परिवर्तन जनता के लिए कितना निरर्थक होता है। दोनों ही देशों में जनता की अपेक्षाएँ पूरी नहीं हो पायीं। हिन्दुओं के लिए भारत और मुसलमानों केलिए पाकिस्तान बनने के बाद भी कई मुसलमान स्वेच्छा से भारत में रहते हैं, और कई हिन्दू पाकिस्तान में रहते हैं। वे उतनी ही उन्नति कर पाये हैं। जितनी वे अपने देश में करते। तब फिर यह प्रश्न उठता है कि ये विभाजन क्यों हुआ। भारत-पाकिस्तान जैसे विभाजन या देश के टुकड़े केवल बाहरी और राजनीतिक दूरियाँ तथा अलगाव

होते हैं। इनके द्वारा अधिक शासन यन्त्रणा में परिवर्तन किया जा सकता है पर मनुष्य की आन्तरिकता को नहीं बदला जा सकता । इन बाहरी विभाजनों से परे मानव के भीतर एक सहज मानवीय संवेदनाओं का स्त्रोत बहता है, जो धर्म और जाति की संकीर्णताओं को लाँघ दूसरे मनुष्य के प्रति मनुष्य होने के नाते आकर्षित होता है। 'धूल उड़ जाती है' के नसीबन और बच्चन दोनों ही न हिंदु हैं न मुसलमान। वे सिर्फ इस धरती के इनसान हैं और मानवीयता की सहज प्रवृत्ति से संवेदित । उन्हें अपने आसपास के लोगों से और अपनी धरती से लगाव है।

'भटके हुए लोग' कहानी के हंसराज, सतबंती और परसोतराम सभी विभाजन के शिकार और शरणार्थी हैं। किसी प्रकार कपड़े की दुकान शुरू कर अपना पेट पाल रहे हैं। साथ में है बीते हुए क्षणों की स्मृतियाँ और छूटे स्थान का लगाव, पर चुंगी वालों ने उन दुकानों को वहाँ से हटा दूसरी जगह बनाने का निर्णय किया। दुकानदारों को विश्वास दिलाया गया कि दुकानें उन्हीं को मिलेगी। पर जब दुकानें बनकर तैयार हुई तो, उनके पुराने मालिकों को दुकानों को देने के स्थान पर उनका नीलाम किया गया। पुराने मालिक गरीबी के कारण दुकानों को नहीं पा सके। छोटा सा आसरा भी छिन गया। विभाजन की मार खाये थे शरणार्थी भ्रष्ट शासन व्यस्था की चक्की में पिस गये। शासन व्यवस्था इनके लिए एक ऐसा अभिशाप बन गयी कि वे कल्पना भी न कर सकें, ऐसे अप्रत्याशित निर्णय लिये

जाते हैं और उनकी साधारण पर आवश्यक चीज़ें पल में बदलते कानून के द्वारा एकदम उनसे छीन ली जाती हैं फिर ऊपर से है कुछ भी न कर पाने की विवशता । बिना किसी अपराध के निरीह लोगों के हाथों से व्यवस्था के नाम पर रोजी रोटी छीन ली जाती है और वे बस मुँह बाये खड़े देखते रह जाते हैं।

3.2.7 अस्तित्व का संकट

अगर 'धूल उड़ जाती है', यदि विभाजन को लेकर जन सामान्य के मानसिक संदर्भों को उद्‌घटित करती है तो 'भटके हुए लोग' आर्थिक संदर्भों में विभाजन की परिणति को अभिव्यक्त करती है। आर्थिक संकट के कारण विभाजन में उखडे लोग अब तक भी नहीं बस नहीं पाये हैं। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी विभाजन की विभीषिका से उबर नहीं पाये हैं,और न मुक्त ही हो पाये हैं। वे सतवंती की तरह एक सुविधापूर्ण जीवन की तलाश में हैं। सतवंती जैसे लोग संभावनापूर्ण भविष्य की प्रतीक्षा करते रहे। लेकिन जनतंत्र में भी आम आदमी की यह प्रतीक्षा और अपेक्षा पूरी नहीं होती। सारी योग्यताओं के बावजूद वह एक बेहतर ज़िंदगी नहीं पा सकता। विसंगतिपूर्ण व्यवस्था में हर व्यक्ति खुद को मिसफिट महसूस करता है। एक अधिकारी भी और एक बेकार आदमी भी। कमलेश्वर की 'बेकार आदमी' कहानी इसी बोध को उद्‌घाटित करती है। कहा यही जाता है कि सारा शासनतंत्र जनसेवा के लिये है, किंतु सरकारी महकमों में आम आदमी के साथ ऐसे तुच्छतापूर्ण ढंग से

व्यवहार किया जाता है कि जनसेवा की घोषणा पर यकीन नहीं आता। शासनतंत्र इस रूप में कार्यान्वित होता है कि जनतंत्र में भी व्यक्ति की योग्यता को कोई महत्व नहीं मिलता और उचित स्थान। हालाँकि पदाधिकारी इसे महसूस करते हैं और व्यक्ति की योग्यता को भी जानते हैं, पर कुछ हो नहीं पाता। कभी-कभी ऐसी भी स्थिति आती है, कि अधिकारी से भी उम्मीदवार अधिक योग्य होता है, किंतु अधिकारी केवल पद और कुर्सी के बल पर बडे के रूप में कार्य करता है। अधिकारी स्वयम् अपनी अयोग्यता की अनुभूति करता है और उम्मीदवार को अनजाने में ही सम्मान देने लगता है, पर जैसे ही उसे अपने पद का ध्यान हो आता है तुरंत सचेत होकर वह अधिकारी का मुखौटा ओढ़ लेता है। ''ऐसा लग रहा था जैसे वे उसके प्रभाव के वृत्त में आते जा रहे हों और उनकी अधिक बात करने की लालसा मरती जा रही हो। पर जैसे क्षण - दो- क्षण बाद उन्हें असली स्थिति का ज्ञान होता था और वे सवाल पूछ उठते थे ।''[17] 'बेकारी आदमी' कहानी इसी कोण से भ्रष्ट शासनतंत्र में आम आदमी की विसंगतिपूर्ण स्थिति को उद्‌घाटित करती है।

उम्मीदवार प्रकाश के आगमन के प्रारंभ में भी सहाय अपने चेहरे पर पदाधिकारी का मुखौटा पहने हुए थे, किंतु जैसे-जैसे प्रकाश के व्यक्तित्व और योग्यता की जानकारी उन्हें होती गयी वे सहज मानवीय रूप में उससे बातचीत और व्यवहार करने लगे। उनके और प्रकाश के स्तर में कोई अंतर नहीं रहा और

चाहकर भी वे अपने इस व्यवहार को नियंत्रित नहीं कर पाये। पर जैसे ही उन्हें अपने पदाधिकारी होने की चेतना होती है, वे तुरंत मुखौटा लगा लेते हैं और प्रकाश से बडे हो जाते हैं। यह शासनतंत्र केवल उम्मीदवार केलिए ही अभिशाप नहीं है, बल्कि अधिकारी के लिए वह वरदान सिद्ध नहीं होता। क्योंकि अधिकारी से भी वह उसकी मनोनुकूल जिंदगी छीन लेता है। आर्थिक मजबूतियाँ उसे शासनतंत्र द्वारा प्राप्त नकली जिंदगी जीने को मजबूर करती है। वी सहाय की मायूसी इस बात का संकेत है कि जिस वर्तमान जीवन को वे जी रहे हैं, उसके प्रति संतुष्ट नहीं है। वे जिस पद पर हैं उस पद को अपने योग्य नहीं मानते। प्रकाश के आगमन से ताज़ी हवा के झोंके का अहसास इस तथ्य की अभिव्यक्ति है कि अधिकारी होने के बावजूद जिस परिवेश में वे रहते हैं, वह उनके लिए घुटन भरा है। आज हर व्यक्ति चाहे वह पद पर बैठा हुआ हो या बेकार, दोनों ही घुटन और असंतोष के बीच जी रहे हैं। भटके हुए लोग कहानी भ्रष्टतंत्र में आर्थिक संदर्भ को लेकर आम आदमी की परिणित को व्यक्त करती है तो बेकार आदमी विसंगत शासन व्यवस्था में व्यक्तित्व की सार्थकता के संदर्भ को लेकर आम आदमी की परिणति को उद्घाटित करती है। प्रकाश की समस्या बेकार आदमी के रूप में केवल अर्थ की समस्या नहीं है, बल्कि इससे आगे जाकर वह अस्तित्व की समस्या है। प्रकाश सारी योग्यता के बावजूद बेकार आदमी है। यह बेकारी आर्थिक संकट को ही केवल प्रकट नहीं करती, बल्कि राष्ट्रीय धरातल पर कहीं भी प्रकाश के लिए कोई उपयुक्त स्थान के न

होने को प्रकट करती है। वी . सहाय भी अधिकारी होने के बावजूद संतुष्ट नहीं है। क्योंकि केवल पद और धन या भौतिक सुख-सुविधाएँ व्यक्ति को सार्थकता का बोध नहीं करा सकतीं। इन सबसे अलग व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के किसी अंश को, किसी उपयुक्त प्रक्रिया में विसर्जित करना चाहता है। वह अपनी योग्यता के अनुरूप क्षेत्र चाहता है , जहाँ उसके व्यक्तित्व को पोषण मिले। इस तंत्र में यह संभव नहीं है। अतः प्रकाश और वी. सहाय दोनों ही अपने व्यक्तित्व के अनुरूप स्थान न पाने के कारण बेकार है।

इस प्रकार आज़ादी के बाद भी आम आदमी एक ओर आर्थिक संकट से जूझ रहा है दूसरी ओर अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रहा है। हालाँकि लोकतात्रिक भारत को प्रकाश जैसे स्वतंत्र रूप से विचार करने वाले योग्य नागरिकों की जरूरत है पर भ्रष्ट शासकों के लिए ऐसे नागरिक उनके स्वार्थपूर्ति के मार्ग में बाधा रूप हैं।

कमलेश्वर की कहानी 'अपने देश के लोग' फैंटेंसी के स्तर पर इस भयावह कुचक्र को प्रकाशित करती है, यहाँ व्यक्ति के दिल-दिमाग पर भी शासकों का अधिकार हो जाता है। जनतांत्रिक व्यवस्था में आम आदमी पदाधिकारियों के हाथों की कठपुतली बन गया है। क्योंकि सरकारी अफिसों में उसके दिल आत्मा और विचारों का आपरेशन किया जाता है और अच्छी जिंदगी पाने के उसके स्वपनों को

निकालकर उन स्वप्नों की जगह अफसरों तसवीरें, फाइलों के गठ्ठर, महँगाई भत्ता बढ़ने और कीमतों के कम होने की सूचना देने वाले अखबारों की कतरने फिट की जाती है। वह आम आदमी इस आपरेशन के बाद ज़िंदगी भर अफसरों को सलाम करने वाला गुलाम बन जाता है, वास्तव में यह आपरेशन पदाधिकारियों द्वारा की गयी एक साजिश है। लोकतंत्र के लिए जिन मूल्यों की जरूरत है देश के स्वार्थी नेता उन मूल्यों को बीमारी का नाम देते हैं।

दीनानाथ का भी आपरेशन किया गया है और उसके भीतर विरोध के स्वर को दबाकर सरकार के समर्थक विचारों को भरा गया है। उसके दिल-दिमाग में विरोध और विद्रोह की शक्ति को निकालकर ऐसी चिकित्सा दी गयी, जिससे वह केवल गुलाम रह गया है। बेकार आदमी में प्रकाश और वी. सहाय अपनी सारी योग्यताओं सहित अपने अस्तित्व के संकट से जूझते सजग और संवेदनशील व्यक्ति हैं, जिनका 'अपने देश के लोग' में ऑपरेशन के द्वारा कायाकल्प कर दिया जाता है। स्थापित शासन-यंत्रण उनके आंतरिक व्यक्तित्व को पूरी तरह बदल डालती है। वे ऐसी मजबूरियों में फँसा दिए जाते हैं कि अफसरों की बात को मानने के अलावा और कोई चारा उनके सामने नहीं रह जाता। भ्रष्टतंत्र और आर्थिक संकट की चक्की के दो पाटों के बीच कुचला जाता आम आदमी दिल और दिमाग से भी अफसरों का गुलाम होने को मजबूर हो जाता है।

3.2.8 आम आदमी के प्रति दमन

दुर्भाग्यवश आम आदमी के भीतर आत्मा या संवेदना जैसी चीजें रह जायें तो हिंदुस्तानी लोकतंत्र में उस व्यक्ति का नाश बडे बद्तर रूप में होता है। क्योंकि मुट्ठी भर स्वार्थान्ध नेताओं ने लोकशाही से संबंधित हर स्वप्न को देखने का या उसके विषय में कुछ सोचने का अधिकार हमने अप्रत्यक्ष रूप में छीन लिया है। इन नेताओं की स्वार्थी वृत्तियों के परिणाम स्वरूप सारी शासन-यन्त्रणा दूषित रूप धारण कर लेती है और आम आदमी के प्रति दमन का चक्र शुरू हो जाता है। कमलेश्वर की कहानी 'बयान' का फोटोग्राफर इन्हीं असहनीयताओं को झेलता है।

भ्रष्ट शासकों द्वारा चलने वाला तंत्र इतना विकृत और विसंग रूप धारण कर लेता है कि लोकतंत्र की सामान्य सच्चाइयाँ भी सुरक्षित नहीं रह पाती। स्वतंत्रता केवल नारों भाषणबाजी तथा अखबारी प्रदर्शनों की चीज बनकार रह गयी है। आज़ादी के शुरु के दिनों में यह फोटोग्राफर उद्घाटनों, समारोहों और विदेशी मेहमानों के आगमन आदि को देख बहुत खुश होता था। क्योंकि ये सब स्वतंत्रता के सुख थे। आज़ाद देश प्रगति कर रहा था। किंतु जब थार के रेगिस्तान को जंगल बनाने की योजना के भीतर छिपी वास्तविकता उसके सामने खुलती है कि परिवर्तन का यह कार्य केवल उद्घाटन तथा अखबारी प्रदर्शन तक सीमित है, जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है तो उसका सारा मोह और भ्रम भंग हो जाता है। इस भ्रम

भंग से छटपटा उठता है। इतने बड़े झूठ को स्वीकार न कर पाने के कारण अंत में वह आत्महत्या कर लेता है। आज भी यदि कोई इस आज़ादी की सच्चाई के प्रति आस्था रखता है तो उसके लिए बयान के फोटोग्राफर के समान जीना मुश्किल हो जाता है। या तो वह आत्म्हत्या कर ले या खुद को नकार दे। खुद को वह नकार नहीं सकता। उसके पास एक ही रास्ता है कि वह मृत्यु तक ज़िंदा मौत जीता रहे। '' फैसला... कुछ तो होता ही। और वह व्यक्ति के खिलाफ ही हो सकता है। जो व्यक्ति माने अकेला आदमी, जैसे अकेली मैं..... या आप या आप...''[18] इस प्रकार कमलेश्वर ने इस कहानी में फोटोग्राफर के माध्यम से बुद्धिजीवी और कलाकार की परिणति का वर्णन किया है।

'भटके हुए लोग' का हंसराज भ्रष्टतंत्र में आर्थिक संकट को झोलता हुआ 'बेकार आदमी' में प्रकाश और वी सहाय के रूप में अस्तित्व के संकट से जूझता है। 'अपने देश के लोग' में वह स्वार्थान्ध शासकों द्वारा गुलाम बनाया जाता है और 'बयान' में गुलाम ने बन पाने के कारण उसे अपना ही अस्तित्व खत्म करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। लेकिन 'जोखिम' में वह आत्महत्या भी नहीं कर पाता। बल्कि पल-पल मौत को जीने के लिए विवश होता हुआ अंत में भयावह स्थितियों के सम्मुख जकड़ा होता है। 'जोखिम' का नायक व्यापक भारतीय फलक पर सताये हुए साधन हीन जन का प्रतीक बनकर हमारे सामने आता है। इस प्रकार जनतंत्र में

भी दमन का चक्र चलता ही रहता है। आम अदमी शासकों की साजिशों का शिकार होता चलता है। हर बार उसे एक नये तर्क के द्वारा चुप बैठाया जाता है। हर बार वह एक बेहतर ज़िंदगी पाने की कोशिश में नये सिरे से प्रतीक्षा की मुद्रा लिए खड़ा रहता है। इसी में जिंदगी बीतती जाती है। वह जब भी अपनी समस्याओं को लेकर जिम्मेदार लोगों के पास पहुँचता है, तब-तब वे लोग के पास पहुँचता है, तब-तब वे लोग अपनी बडी-बडी समस्याओं को उसके सम्मुख प्रकट करते हैं। उसे भीतर ही भीतर अपराध बोध होता है। क्योंकि उसे महसूस होता है उसकी दो समय की रोटी जैसी मामूली समस्या की तुलना में इन ज़िम्मेदार लोगों की समस्याएँ कितनी अधिक महत्वपूण है। ऐसे में उसका इन लोगों को पास आना स्वार्थपूर्ण है और वह अपनी समस्ता का कोई हल पाये बिना लौट आता है और पुनः समस्या से जूझने लगता है। भ्रष्ट अर्थ व्यवस्था की नागफाँस में जकडा हुआ यह ऐसा व्यक्ति है जो समझ ही नहीं पाता कि केवल कायदे से जी जा सके ऐसी ज़िंदगी पाने केलिए क्या करना चाहिए। विसंगत राजनीतिक स्थितियाँ आम आदमी को इतना विवश बना देती है कि वह अपने आपकों एकदम मजबूर महसूस करता है। कुछ भी न कर सकने की अनुभूति बाहरी संकटों के अलावा आतंक और भय के भीतरी मानसिक संकट को जन्म देती है। शासन तंत्र की विराटता के सम्मुख वह अपने आपको बिलकुल ही दुर्बल और भयभीत महसूस करता है। भ्रष्ट राजनीति में एक ओर व्यक्ति के सम्मुख

आजीविका का बाहरी संकट उपस्थित होता है तो दूसरी ओर अपनी सामर्थ्य हीनता की अनुभूति का मानसिक संकट भी।

3.2.9 जीवन की समस्याएँ

कमलेश्वर की कहानियों में से उभरते हुए व्यक्ति की जिंदगी कई समस्याओं के बीच से गुजरते और प्रभावित होते हुए अपना रूपाकर ग्रहरण करती है। 'मुरदों की दुनिया' से 'खोयी हुई दिशाएँ', 'मैं', 'अजनबी' और 'दूसरी सुबह सूरज पश्चिम में निकला' 'कहानियाँ' प्रस्तुत पीठिका पर गाँव कस्बा नगर और महानगर तक की मानव यात्रा है। कमलेश्वर की कहानियों का नायक एक ऐसा व्यक्ति है, जो गाँव से नगर और महानगर तक की यात्रा करता है। इसे पुरातनता से आधुनिकता की यात्रा भी कह सकते हैं और साथ ही वह बोध, संस्कार और मानसिक स्तर का भी सफर है। इसलिए वह यात्रा केवल बाहरी ही नहीं बल्कि बाहरी से अधिक आंतरिक यात्रा है। जीवन के बाहरी रहन-सहन और तौर तरीके से अधिक संस्कारों और वृत्तियों की यात्रा है। गाँव से महानगर तक का यह सफर वास्तव में आधुनिक होते चलने की प्रक्रिया है। किंतु यह प्रक्रिया बड़ी कठिन और जटिल है। इस प्रक्रिया में जहाँ एक ओर बहुत कुछ नया हमारे साथ जुड़ता है वहीं बहुत कुछ पुराना छूटता चलता है। इसलिए अनिवार्य होने के साथ-साथ यह प्रक्रिया यातनापूर्ण भी है। हमारे यहाँ यह प्रक्रिया अभी पूर्ण नहीं होने पायी है। अभी हम इसमें से गुज़र रहे हैं। अतः

इसमें से गुजरने के दरमियान व्यक्ति के मानसिक स्तर पर जो बोध उभरता है, उसके साथ जो जुड़ता और छूटता चलता है, संकट का जो बोध उसे होता है, यही कमलेश्वर की कहानियों में उद्‌घटित हुआ है।

वास्तव में महानगर ही आधुनिकता के स्रोत हैं और कमलेश्वर की कहानियाँ क्रमशः बढ़ती आधुनिकता की कहानियाँ हैं। अतः इन कहानियों में भी महानगर बोध के संदर्भ में व्यक्ति का विश्लेषण और इसकी परिणित व्यक्त हुए हैं।

3.2.10 महानगर बोध

कमलेश्वर की कहानियों में महानगर बोध के दो स्तर मिलते हैं उनकी प्रारंभिक कहानियों में व्यक्त महानगर बोध का स्वरूप प्रत्यक्ष महानगरीय पृष्ठिका का परिणाम नहीं है। कस्बों या गाँवों में रहने वाले लोगों पर महानगरीय बोध की छाया धीरे-धीरे कैसे मंडरा रही है- इसका चित्रण इन कहानियों में हुआ है। इसलिए महानगरीय पृष्ठिका की अनुपस्थिति में ये कहानियाँ महानगरीय परिणामों का संकेत कस्बाई पृष्ठिका पर छोड़ती हैं। इन कहानियों में लोग गाँव में रहकर ही महानगर के वरदान या अभिशाप को झेलते है। जबकि बाद की कहानियाँ में महानगर में रहकर और वहाँ की भीड़ का हिस्सा बनकर महानगर के बोध को झोला गया है। अर्थात् महानगर के परिवेश और स्थान के तत्वों के भीतर रहने वाले लोगों का महानगर बोध उद्‌घाटित हुआ है।

अन्य देशों के महानगरों से भारत के महानगरों की स्थिति कुछ भिन्न है। हमारे यहाँ महानगर अपने मौलिक और पूर्णरूप में आधुनिक महानगर नहीं है, बल्कि इनके भीतर अपने भग्न और नष्टप्राय होते हुए रूप में ही क्यों न हो गाँव और कस्बों की चेतना तथा संस्कृति विद्यमान है। अपने बाहरी या भौतिक रूप में ये अवश्य आधुनिक हैं क्यों कि यहाँ सारे वैज्ञानिक और मशीनी उपकरण स्थापित हो चुके हैं। किंतु इन सबके बीच रहने वाला मनुष्य अभी पूरी तरह से आधुनिक नहीं है। मानसिक स्तर पर वह कस्बाबोध से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया है। कमलेश्वर की प्रारंभिक कहानियों में इसी कस्बाबोध में संस्कारित व्यक्ति का महानगर बोध अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए ये कहानियाँ कस्बाबोध और महानगर बोध में द्वंद्व की कहानियाँ है।

महानगर में पहुँचकर भी कस्बाई चेतना से पोषित मन बार-बार छूटे हुए गाँव की याद करता है, जहाँ हर वस्तु में मानवीय संस्पर्श का अहसास था । जबकि महानगर इसके बिलकुल विपरीत अमानवीयकरण की प्रवृत्ति बढती जा रही है। यहाँ इनसानी रिश्ते औपचारिकता तक सीमित रह गए हैं जिनमें मानवीय संवेदना की उष्मा के स्थान पर केवल एक ठंडापन और जड़ता है। इसके साथ ही साथ है महानगरों में बढ़ती हुई भीड़। कमलेश्वर की कहानियों का व्यक्ति इन्हीं संस्थाओं के बीच से उभरा इन्हीं संस्थाओं के बीच से उभरा व्यक्ति है और इसकी ज़िंदगी को

विभिन्न कोणों से कमलेश्वर ने देखा और विश्लेषित किया है। 'मुरदों की दुनिया' कहानी आधुनिकता के आगमन और कस्बाबोध तथा महानगर बोध के बीच द्वंद्व की सूचना देती है। भौतिक स्वरूप में परिवर्तन के द्वारा यहाँ आधुनिकता का आगमन दिखाया गया है। कस्बे के लोगों में परस्पर अनौपचारिक भोली आत्मीय भावना उनकी जिंदगी का एक अभिन्न अंग होती है। यह स्नेह संवेदना केवल मनुष्य के लिए नहीं बल्कि प्राणिमात्र के लिए होती है।

'मुरदों की दुनिया' का निसार भी अपने मन की सारी आत्मीयता और स्नेह अपने बकरे नूर के प्रति व्यक्त करता है। नूर का साथ और बस के अड़डे की रौनक, भीड़ और चीख-पुकार यही सब निसार का जीवन है। नूर को भी उसने किसी स्वार्थवश नहीं पाला है। इस प्रकार निसार की सारी मानसिकता और जीवन-दृष्टिकोण कपट रहित और अत्यंत सहज तथा सरल है। बस-अड्डे का परिवेश और निसार की मानसिकता के बीच सुसंगत संबंध है। यह परिवेश उसे जीवंत होने की अनुभूति और अपनेपन का बोध देता है। क्योंकि उसकी सारी मानसिकता उसी से निर्मित और चालित है। किंतु सावित्री के व्यवहार और परिवेश के परिवर्तन से निसार की मानसिकता को झटका लगता है। जिस सावित्रि के पास बैठकर वह अपनेपन की अनुभूति पाता था, वही सावित्री उसके जीवन-केंद्र नूर को पैसों के लिए कसाई के हाथों बेच देती है। यहाँ व्यावसायिक और आर्थिक धरातल पर पनपते मानवीय संबंधों का संकेत है। साथ ही यह भी कि बदलते परिवेश का निसार

का कस्बाई मन आसानी से स्वीकार नहीं कर पाता। लारी की जगह नयी सरकारी बसों का आगमन परिवर्तन के कारण के रूप में आता है। जिसके परिणाम स्वरूप अड्डे का सारा वातावरण और परिवेश ही बदल जाता है। बसों के आगमन से निसार की आर्थिक आय का साधन तो छिन ही जाता है, साथ ही नये परिवेश से वह मानसिक स्तर पर संसिक्त नहीं हो पाता। आर्थिक आय के अभाव से अधिक कसक निसार के भीतर बदले हुए परिवेश को लेकर है। परिवर्तन की प्रक्रिया यहाँ पूरी नहीं हुई है। परिवर्तन का प्रारंभ हो जाने का संकेत यहाँ मिलता है। निसार के मन में इस बदलते परिवेश को लेकर छटपटाहट और अद्विग्नता है ओर साथ ही पुरानी जिंदगी को पा जाने की आशा भी है। कस्बे महानगर बोध का आगमन अर्थात् आधुनिकता की प्रक्रिया के शरुआत की स्थिति यहाँ मिलती है। इस शुरुआत से व्यक्ति के मन में उत्पन्न संघर्ष और मानसिक तनाव को भी अभिव्यक्त किया गया है। निसार की मुद्रा में इस परिवर्तन के प्रति नकार बोध है और परिवर्तन उसके लिये संकट का बोध है।

3.2.11 मशीनी संस्कार

वैज्ञानिक विकास और मशीनों का आविष्कार व्यक्ति केलिए हुआ पर व्यक्ति उन्हें नियंत्रित नहीं कर पाया बल्कि वह यात्रिकता का गुलाम बनने को मजबूर हुआ। वह स्वयं यंत्रों के द्वारा नियंत्रित होने लगा। मशीनीकरण पर नियंत्रण न रख पाने के

कारण खुद उसकी ज़िंदगी धीरे-धीरे यंत्रवत् बनने लगी ओर एक ऐसी स्थिति आयी जब उसकी संवेदनाएँ और उसकी मृदुलता भी मशीनों की भेंट चढ गए।

यंत्रकेंद्रित जीवन ओर बढ़ती व्यावसायिकता के बीच धीरे-धीरे ये संबंध भी टूटते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति उष्माविहीन रूक्ष जीवन जीने को मजबूर हो गया। हमारे जीवन के आदर्श और उद्देश्य सब कुछ यंत्रों की विराटता के नीचे दबते जा रहे हैं। अतः आज संबंधों में मृदुलता और समतलता की जगह खुरदुरापन अधिक है। जिस ज़िंदगी को हम प्यार केलिए समझते हैं, वह अर्थ की भेंट चढ़ जाती है। हममें इतना भी सामर्थ्य नहीं रहती कि हम अपने जीवन मूल्यों की स्थापना कर सकें।

'चायघर' का शरद् संवेदनशील कवि होने के नाते अपनी कला के द्वारा दुनिया को बदल देने का संकल्प लेकर जीवन-संघर्ष में प्रवेश करता है। आर्थिक अभाव के कारण मजबूर होकर वह कारखाने में काम करने लगता है। फिर जीवन रूपी मशीन का एक पूर्जा मात्र बनकर रह जाता है। उसके भीतर की सारी मानवीय कोमलता मंद और शिथिल पड जाती है। शरद चायघर में आसपास के वातावरण में और अपनी ज़िंदगी में कभी न पिघलने वाली स्थिर उदासी को ही महसूस करता है। क्योंकि उसके आसपास कहीं मानवीय भावनाओं की उष्मापूर्ण निकटता नहीं है। किंतु लेडीवेटर की आत्मीयता उसकी संवेदना को जाग्रत करती है और उसकी

निकटता में उसे लगता है कि चायघर की उदासी पिघल रही है। हालाँकि चायघर वही था, वहाँ का वातावरण भी वही था पर लेडीवेटर के द्वारा उसे जिस अपनत्वभरी भावनाओं की प्रतीति हो रही थी, उसने उसकी सारी मनः स्थिति को बदल डाला था। मानवीय संबंध ही वातावरण को अर्थ प्रदान करते हैं किंतु जब लेडीबेटर उसी आत्मीयता से दूसरे व्यक्ति के सामने पेश होती है तो सब कुछ वही और वैसा ही होते हुए भी वह महसूस करता है कि चायघर की उदासी ज्यों की त्यों है! क्योंकि यहाँ लेडीवेटर की आत्मीयता भी मानवीय संवेदना से प्रेरित नहीं है। वह व्यावसायिक मूल्य मात्र है। इस प्रकार यहाँ भी आधुनिकता और यांत्रिकता के आगमन के रूप में महानगर बोध का मानसिक स्तर पर प्रभाव अभिव्यक्त किया गया है।

'मुरदों की दुनिया' से 'चायघर' तक का सफर गाँव से कस्बे तक का सफर है । 'मुरदों की दुनिया' के बस-अड़डे की जगह पर अब पूरा औद्योगिक विस्तार है। अर्थातयान्त्रिकता कुछ विस्तृत रूप में उपस्थित है। इसमें से निर्मित जड़ता और अमानवीयकरण का शरद् शिकार है। किन्तु निसार की तरह यहाँ शरद् छटपटाहट भरा नहीं है, बल्कि छटपटाने के बाद थका हुआ और हताश तथा निराश है। निसार जैसा दमखम उसमें नहीं रहा है, बल्कि शिथिलता आ गयी है।

चाहे व्यक्ति गाँव में रहता हो या महानगर में, अकेलेपन और परायेपन का अभिशाप आज हर व्यक्ति के साथ हर स्थान पर जुड़ा हुआ है। किसी भी प्रकार न इससे छुटकारा है, न कहीं निस्तार। महानगर की रूक्षता के बीच रहते हुए व्यक्ति बार-बार अपने गाँव-कस्बे को याद करता है, तो कस्बे में रहने वाला व्यक्ति महानगरीय अमानवीयकरण की प्रवृत्ति को झेल रहा है। महानगर बोध और अमानवीय करण की प्रवृत्ति दोनों मिलकर शहर और हमारे अपने गाँव दोनों को भी पराया बना रहे हैं, न हम गाँव को अपना कह सकते हैं, न शहर को। दोनों के भीतर एक ही अनुभूति होती है परायेपन की और अकेलेपन की।

'पराया शहर' कहानी में पिता का कस्बाबोध और पुत्र का महानगरबोध अंत में एक ही परिणति को प्राप्त होते हैं। कस्बे में रहने वाला दुर्गदयाल अंत में अकेलेपन और परायेपन के बोध से उत्पन्न पीड़ा को झेलता है, क्योंकि आधुनिक स्थितियों में परंपरागत मानवीय संबंधों का निर्वाह संभव नहीं रहा है। दूसरी ओर सुखबीर जो कि महानगर में जी रहा है, वह भी उसी अजनबी और परायेपन की पीड़ा को भोगता है, हालाँकि वह परंपरागत जीवन व्यवस्था से अलग महानगर की आधुनिकता के बीच जी रहा है, पर उसकी स्थिति में भी कोई अनुकूल परिवर्तन नहीं आया है, क्योंकि पुराने मानवमूल्य और संबंध ज़रूर निरर्थक होते जा रहे हैं, पर उनके स्थान पर समय संगत नये मूल्यों और मानवीय संबंधों का निर्माण नहीं हो पाया है। आधुनिकता की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हो पायी है।

'पराया शहर' में सुखबीर और दुर्गदयाल दोनों ही कुछ छूटते जाने की यातना को झेलते हैं और कुछ भी न कर पाने की अनुभूति से निराश और हताश हैं। कस्बा-संस्कृति के प्रति लगाव, उसके खत्म होते चलने की प्रक्रिया और उससे उत्पन्न पीडा प्रमुख रूप से कहानी में अभिव्यक्त हुए हैं। एक ओर गाँव से दूरी पीडा है, तो दूसरी ओर महानगरीय परिवेश का बढ़ता हुआ दबाव है और उसमें से उत्पन्न छटपटाहट है। महानगर की विराट यांत्रिकता के सम्मुख व्यक्ति कुछ भी न कर पाने वाला कमज़ोर और टुच्चा बनकर रह जाता है। अपने आप से भी अलग और दूर हो जाने को मजबूर हो जाता है। महानगरीय भीड़ का एक अंग मात्र रह जाता है। अतः उसकी अपनी कोई स्वतंत्र पहचान शेष नहीं रहती।

'खोई हुई दिशाएँ' कहानी महानगरीय परिवेश में व्यक्ति की इसी परिणित को उद्‌घाटित करती है। चंदर कस्बे का सामाजिक परिचय वाला संस्कार लेकर महानगर में भटकता है, लोगों से निरछल संबन्धों की अपेक्षा करता है किंतु यहाँ अजनबीपन निरंतर डसता रहता है। उसके सारे रिश्ते-नाते और संबंध इस परिवेश में अपना अर्थ खो बैठते हैं। वे किसी स्वार्थ से जुडे होते हैं। व्यक्ति को उसकी निजता में सारी संस्थओं से अलग केवल व्यक्ति के रूप में कोई नहीं पहचानता। सब उसे किसी न किसी संस्था, किसी स्वार्थ या किसी प्राप्ति के संदर्भ में ही पहचानते हैं। यहाँ संबंध मानवीय संवेदना में से निर्मित न होकर महानगरीय संभ्यता में बनते हैं। महानगर में रहता हुआ व्यक्ति मानवीय संबंधों को जीने के स्थान पर

मानवीय संबंधों को जीने के स्थान पर मनवीय संबंधों की निर्जीवता उष्मारहित ठंडेपन और जड़ता को वहन करता है।

गाँव के आत्मीयता भरे वातावरण से आया हुआ चंदर दिल्ली में इतना अधिक अकेलापन महसूस करता है कि पत्नी के द्वारा भी न पहचाने जाने की भयाक्रांत अनुभूति से भर जाता है। वह अपनी पहचान की तलाश कर रहा है पर उसे कहीं कोई, पहचान नहीं मिलती। अंततः व्यक्ति की पहचान दूसरे व्यक्ति के साथ उसके संबंधों के भीतर से ही उभरती है। व्यावहारिक धरातल पर निर्मित संबंधों से परे दो व्यक्तियों के बीच कुछ ऐसे संबंध होते हैं जो स्वार्थ या लाभ से परे मानवीय धरातल पर पनपती है। हमारा सारा व्यवहार ही ऑटोमेशन की तरह होता है- स्थिर, गतिहीन, यंत्रवत। हमारा व्यक्तित्व कहीं भी अपने आप में स्वतंत्र या स्वनिर्मित नहीं है।

'पराया शरह' में छूटे हुए की पीड़ा प्रमुख है। 'खोयी हुई दिशाएँ' में परिवेश के दबाव से उत्पन्न पीड़ा प्रमुख है। दो कहानियों की ये दो अलग स्थितियाँ वास्तव में एक ही क्रम की दो कडियाँ है। 'मुरदों की दुनिया का निसार' और 'खोई हुई दिशएँ' का चंदर दोनों छटपटाहट से भरे हैं, पर दोनों की छटपटाहट में अंतर है। निसार परिवर्तन की असहनीयता और बीते हुए को लौटा लाने की आशा भरी छटपटाहट लिए हुए हैं। जबकि चंदर की छटपटाहट जो कुछ है उसी के भीतर से

तलाश की प्रक्रिया के जारी होने का अहसास है। 'पराया शहर' में सुखबीर और बापू यातना के बाद हताश, निराश और निष्क्रिय हो जाते हैं। जबकि चंदर असहनीय यंत्रणा के बाद अधिक छटपटाहट भरा, प्रयत्न भरा है। वह हारा हुआ या हताश नहीं है लेकिन अमानवीकरण की प्रक्रिया रुकती नहीं है बल्कि, तीव्र होती जाती है।

अजनबीपन तथा अपरिचय की स्थिति बढ़ते-बढ़ते उस स्तर तक पहुँच गयी है। जहाँ नाम पता और ठिकाना सब कुछ जानते हुए भी व्यक्ति गंतव्य स्थान पर नहीं पहूँच पाता और अजनबी की तरह भटकता रहता है। महानगरों में हर कोई दूसरे केलिए अजनबी है। इसलिए कोई किसी के विषय में कुछ नहीं जानता। यहाँ संबंध सूत्रविहीन ज़िंदगी जी जाती है।

'अजनबी' कहानी का अजनबी अपने ठेकेदार मित्र बतरासाहब को नाम, पता मौजूद होने के बावजूद सीधे किसी तक पहुँच पाना संभव नहीं रहा है। किसी व्यक्ति तक पहुँचने केलिए कई संस्थाओं से होकर गुज़रना पड़ता है। इसलिए अजनबी उस सारे परिवेश के बीच अपने आपको बिलकुल अजनबी महसूस करता है। इमारतों को बनानेवालों में कोई संबन्ध-सूत्र नहीं है। परिणामस्वरूप जो चीज़ बनती है वह निर्मित होती हुई नहीं लगती। वस्तु में निर्माता का व्यक्तित्व कहीं भी नहीं उभरता। वस्तु उसके व्यक्तित्व के द्वारा नियंत्रित नहीं होती, बल्कि उसकी शक्ति और प्रतिभा निश्चिय मशीनी पैटनों के द्वारा नियंत्रित होते हैं। यहाँ व्यक्ति की पहचान आधुनिक

ज़िंदगी के पैटनां में विलीन हो जाती है। यहाँ 'खोई हुई दिशाएँ' के चंदर के समान अजनबी की मानसिक यातना व्यक्त नहीं हुई है, बल्कि प्रमुख रूप से वे कारण और स्थितियाँ सामने आये हैं, जिनसे व्यक्ति खुद को अजनबी महसूस करता है।

महानगरीय परिवेश में कहीं भी व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व कोई ऐसी विशिष्टता नहीं दे पा रहा है कि वह परिवेश उसी का सिद्ध हो सके। ज़िंदगी इतनी सामान्य और सपाट पहचान देने लगी है कि किसी चीज़ की कोई शिनाख्त नहीं है। अपनी पत्नी भी अपनी पत्नी नहीं है और 'मैं ' भी अपना 'मैं' नहीं है। कमलेश्वर की 'मैं' कहानी इसी स्थिति को उद्‌घाटित करती है।

'मैं' कहानी का साहब अपनी पहचान देने की कोशिश में अंत तक सफल नहीं हो पाता। वह अपनी पहचान की जितनी भी गवाहें पेश करता है, उन्हें देख पुलिस को हर बार यही लगता है कि ये किसी की भी पहचान हो सकती है। साहब क्रमशः ड्रॉइंग रूम, स्टडी और बेडरूम के वर्णन द्वारा अपना ही घर होने की बात सिद्ध करना चाहता है। व्यक्ति अपने बेडरूम में किसी तीसरे व्यक्ति को बर्दाश नहीं कर सकता। उसकी सबसे बड़ी पहचान उसकी पत्नी होती हैं, फिर भी यहाँ शक बना रहता है कि उसके पास कौन सोया है। बीवी के साथ सोये हुए उस मैं को भी पुलीस मानने को तैयार नहीं है। शायद पुलिस को यह शक है कि बीवी भी किसी और की हो सकती है। उस सारे परिवेश में कहीं भी उसका अपना व्यक्तितव कोई

ऐसी विशिष्टता नहीं दे पा रहा है कि वह परिवेश उसीका सिद्ध हो सके। वह इतना सर्वसामान्य है कि किसी का भी हो सकता है। पति के रूप में अपनी पत्नी के साथ उसकी कोई पहचान नहीं उभरती। आज व्यक्ति की पहचान इतनी सामान्य होती जा रही है कि वह छोटी होते होते परिवेश में पूर्णतः विलीन हो जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशिष्टता गौण हो गयी है और परिवेश महत्वपूर्ण । खुद की खुदी, अपनापन यानि मायनेस भी अपना नहीं है, पराया बन गया है। दुनिया उसे पराये के रूप में स्वीकार करती है, तब चिल्लाकर कहना पडता है कि यह मैं हूँ आज मेरी अपनी मुद्रा भी मेरी नहीं रही, वह किसी की भी हो सकती है।

सारी विपरीत स्थितियों के बावजूद व्यक्ति की यात्रा किसी एक बिंदु पर रूद्ध नहीं हो जाती। वह निरंतर इस कोशिश में रहता है कि उसे जकड़ती स्थितियों के बीच उसे नया रास्ता निकालना है। 'दूसरी सुबह सूरज पश्चिम में निकला था, कहानी ऐसी संभावनापूर्ण दिशा की तलाश का संकेत है। महानगरीकरण की अमानवीय प्रक्रिया के बीच निरंतर व्यक्ति मशीन होते जाने का बोध करता है। यहाँ की यंत्रवत ज़िंदगी में आत्मीय क्षणों को खोता चला जा रहा है। उसके जीवन की भावात्मक उष्मा और मधुर अनुभूतियाँ उसकी पकड से निरंतर छूट रहे हैं। यंत्रीकरण उसकी दिनचर्या पर हावी है लेकिन इस सबके बावजूद व्यक्ति अपने लिए ज़िंदगी के भावात्मक संवेगों और ऊष्मा के कुछ क्षणों को तलाश लेता है।

मुसलाधार बारिश में आधी रात के बाद समुद्र तट पर बैठे नारी-पुरुष इन्हीं क्षणों की तलाश में है। महानगरीय परिवेश के ठीक बीचो-बीच बैठे हुए होकर भी उससे तटस्थ और असंमपृक्त हो पाने में दोनों सफल हो सके हैं। उनकी यही सफलता यंत्रीकरण के सम्मुख व्यक्ति की विजय का संकेत है। यह कहानी मूलतः अनुभूतियों और आवेगों की रचना है, जिसमें लेखक समुद्र-तट पर सिर पटकती लहरों, मुसलाधार बारिश और बाररिश में कहीं दूर नाव से उतरती लाश, और उसके इस तफ एक बेंच पर सारे दुःखों के बावजूद अंतरंगता के पवित्र क्षण बाँटते एक जोड़े के माध्यम से आदमी की आश्चर्यजनक और ज़रूरी जिजीविषा की तह तक पहूँचती है।

सांस्कृतिक संस्था के मूल्य हमारी सामाजिक राजनीतिक संस्था और मानवीय संबंधों आदि के द्वारा तय होते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि अंततः अप्रत्यक्ष रूप से समूची राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यक गतिविधियाँ साँस्कृतिक मूल्ययोन्मुखी होती है।

3.2.12 मानवीयता

आज मानवीय संबंधों में मृदुलता के स्थान पर क्रूडनेस है जो धीरे-धीरे उसे अमानवीयता की ओर ले जाती है। उसका सारा व्यवहार दूसरे के साथ सभ्यतापूर्ण लेकिन स्वार्थचालित है। वह सभ्यता व्यक्ति की ज़िंदगी का लक्ष्य नहीं है। न ही

लक्ष्य तक पहुँचने का साधन है। व्यक्ति का लक्ष्य मानवीय मूल्यों की स्थापना और सुरक्षा है। लेकिन आज मानवीय मूल्यों के स्थान पर जीवन की टेक्निक ज्यादा महत्वपूर्ण हो गयी है।

यहाँ हमें यही देखना है कि इस संदर्भ में मानवीय रिश्तों का विश्लेषण कमलेश्वर की कहानियों में किस प्रकार आया है। उनकी 'गाय की चोरी' 'कस्बे का आदमी', 'नौकरी पेशा', 'नीली झील', 'धूल उड़ जाती है', 'स्मारक', 'आत्मा अमर है', 'बेयान', 'नागमणि', 'दूसरी सुबह सूरज पश्चिम में निकला था', और 'इतने अच्छे दिन', आदि कहानियाँ सांस्कृतिक संबंधी कमलेश्वर के विभिन्न दृष्टिकोणों को स्पष्ट करती हैं।

कमलेश्वर की 'गाय की चोरी', 'नौकरीपेशा' और 'धूल उड जाती है' कहानियाँ मानवीय सौहार्द और करुणा को उद्घाटित करती हैं। 'गाय की चोरी' के मुंशीजी व्यक्ति सत्ता की चेतना से होते हुए मानवीय करुणा के स्तर पर पहूँचते हैं। प्रारंभ में वे अपने आपको समाज के बीच एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इस प्रयास में अच्छे-बुरे हर तरीके से वे लगे हुए है। लेकिन उनकी यह विशिष्टता खोखली थी, समय की मार ने उन्हें भी साधारण व्यक्ति बना दिया था। लेकिन वे मानसिक स्तर पर इस सच्चाई को स्वीकार नहीं कर पाते। लेकिन एक बार दुर्घटना में उनकी असलियत लोगों के सम्मुख खुल जाती है। बुढ़ीया की

चोरी चली गयी गाय के लिए पूठताछ करते पुलिस के सम्मुख वे झूठ बोलते हैं। उनकी सारी साख मिट्टी में मिल जाती है। लेकिन मुंशीजी के भीतर अवरुद्ध मानवीयता का स्रोत तब प्रवाहित हो उठता है, जब वे मुनसरिम साहब के बच्चों को बिना दूध रोता हुआ देखते हैं। सारी भीरूता त्याग उस वक्त वे गाय की तलाश में निकल पड़ते हैं। लड़झगड़ कर गाय लौटा लाते हैं। इस बिन्दु पर वे अपनी व्यक्तिसत्ता और बाहरी पहचानों को भूल जाते हैं। बच्चों की तकलीफ उन्हें बेचैन करती है। वे गाय पाना चाहते हैं और उसके लिए संघर्ष करते हैं, लेकिन यह संब लोगों की नज़रों में ऊँचा उठने के लिए नहीं, बल्कि बच्चों की तकलीफ दूर करने के लिए करते हैं। यही मानवीय करूणा स्नेह और सौहार्द के स्तर पर 'नौकरी पेशा' और 'धूल उड़ जाती है' कहानियों में मिलती है। 'नौकरी पेशा' में बाबू राधेलाल रामभरोसे के प्रति गलत फहमी पाले हुए हैं। रामभरोसे के नाती की खुशी केलिए में दिए भोज के समय घी को लेकर दोनों के बीच थोड़ा तनाव उत्पन्न होता है। लेकिन रामभरोसे इसे भूल जाते हैं। जबकि राधेलाल के मन में संदेह बना रहता है। इसलिए रामभरोसे के बीमार पडने पर भी राधेलाल उनकी एवजी में काम पर जाने का साहस नहीं कर पाते। लेकिन जब रामभरोसे की मृत्यु पर उन्हें पता चलता है कि वे उन्हीं की सिफारिश कर गए हैं, तब उन्हें विश्वसा नहीं होता। अपने गलत अनुमान पर पश्चाताप होता है और छूटे हुए गाँव की याद आने लगती है। नगर में आकर वे अपने गाँव और कस्बे के मानवीय संबंधों के उन आधारों को भूल चुके हैं

जो स्नेह, सौहार्द और परस्पर के सहयोग पर आधारित है। मानो शहर आकर दोनों शहर के हो गए हो। लेकिन रामभरोसे की मानसिकता पर अभी ग्राम-संस्कृति और मानसिकता का प्रभाव शेष है। शहर आने के बावजूद आत्मीयता का स्त्रोत पूरी तरह सूखा नहीं है। इसलिए राधेलाल के प्रति उनके मन में किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं आने पाती और वे बडे निखालिस रूप में उनकी सिफारिश करते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी मानवीय संबंन्धों के आधारों का संकेत करती है। क्षमा और सहयोग जैसे मानवीय मूल्य इसमें स्थपित हो सके हैं। ये मूल्य अपनी चरम स्थिति में 'धूल उड़ जाती है', कहानी में मिलते हैं। इस कहानी में नसीबन मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। विभाजन की दुर्घटना को लेकर लिखी गयी इस कहानी में नसीबन धार्मिक और सांप्रदायिक संकुचितता से परे मानवीय बोध के धरातल पर स्थित है। वह न हिंदु है न मुस्लमान। नसीबन बस्ती की रहने वाली हैऔर एक माँ है। इसलिए बसती में रहने वाले हर व्यक्ति के प्रति उसे मनमें ममत्व है, चाहे वह हिंदु हो या मुसलमान। वह बच्चन के बच्चों को भी वही स्नेह देती है, जो वह स्वयं अपने बच्चों को देती है। हिंदुस्तान पाकिस्तान विभाजन की बड़ी-बड़ी बातों और सुख-स्वप्नों से अलग उसे उस बस्ती की धरती से, मिट्टी से परिवेश से और वहाँ रहने वाले लोगों से असीम प्यार है। यह ममत्व सांप्रदायिकता की संकुचितता से ऊपर मानवीयता के धरातल स्थित हैं। नसीबन

केलिए, धर्म, संप्रदाय रंग और जाति की बाहरी पहचानों का कोई महत्व नहीं है। उसके लिए इन्सान का महत्व है। प्रतिगामी शक्तियों की करतूतों के जो परिणाम हुए, उनसे साई भी अंत में दुःखी होता है और पश्चाताप करता है। उसके भीतर भी इनसानों से कट जाने का दर्द जन्म लेता है।

इस प्रकार ये कहानियाँ बाह्य पहचानों को नकारती हुई मानवतावादी धरातल पर मानवीय संबंधों को विश्लेषित करती है। करुणा, स्नेह तथा सौहार्द जैसे मानवीय मूल्यां की प्रतिष्ठापन करती हैं।

3.2.13 पशु-पक्षियों के प्रति मानवीयता

कमलेश्वर की 'कस्बे का आदमी' और 'नीली झील' कहानियाँ उस स्थिति को उद्घाटित करती हैं, जहाँ व्यक्ति मानव के अतिरिक्त पशु पक्षियों और प्राणियों तक अपनी मानवीय करुणा को प्रवाहित करता है। 'कस्बे का आदमी' 'कहानी के छोटे महाराज की संवेदना अपने परिवेश और परिचित व्यक्तियों के अतिरिक्त भावात्मक और मानवीय स्तर पर अपने तोते के साथ जुडी हुई हैं। कस्बाई संस्कृति में संस्कारित छोटे महाराज अपनी आस्थाओं के कारण तोते के मुँह से अंतिम समय में संत बानी सुनना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने तोते को संभालकर रखा है। लेकिन छोटे महानाज के पूरे व्यवहार को जब हम ध्यान से विश्लेषित करते हैं, तब पता चलता है कि वे केवल संतबानी सुनने के स्वार्थ तक सीमित नहीं है, बल्कि

उनके भीतर तोते के प्रति करुणा का भाव है। इसीलिए उन्हें अपनी चिंता से अधिक चिंता तोते की है। तोते को बिल्ली से बचाने केलिए वे शिवराज के घर भेज देते हैं। लेकिन जब उसके बच्चे के पास तोते के पंख देखते हैं और तोते की दर्द भरी चीख सुनते हैं तो चौंक उठते हैं। इतनी बीमार हालत में भी घिसटते हुए वे तोते को ले आते हैं। इतना ही नहीं बल्कि अपनी मृत्यु से पूर्व तोते को बिल्ली से बचाने का पूरा प्रबंध कर जाते हैं। यहाँ छोटे महाराज सारी संस्थाओं से परे एक मानव मात्र हैं। उनके भीतर किसी भी स्वार्थ से रहित करुणा का बोध है। इसी के माध्यम से छोटे महाराज मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में सफल होते हैं।

छोटे महाराज के ही समान मानवेतर व्यापक करुणा 'नीली झील' के महेसा में मिलती है। महेसा का सौंदर्य बोध वस्तु-जगत की स्थूलता से होता हुआ मानवेतर करुणा में परिणत होता है। महेसा के भीतर की भूख शारीरिक रूप में व्यक्त हुई है। किंतु वास्तव में यह भूख शारीरिक न होकर सौंदर्य की भूख है। वह भी केवल बाह्य सौंदर्य के प्रति इंद्रियगत आकर्षण तक सीमित नहीं है। बल्कि सौंदर्य का यह आकर्षण उसकी मानवीय संवेदना तक व्याप्त है। इसके परिणामस्वरूप महेसा लोगों को धोखा देने में भी हिचकिचाता नहीं है। पूरी कहानी में महेसा का सौंदर्य बोध क्रमशः गहराता जाता हैऔर स्थूलता के स्तरों को पार कर सूक्ष्मता तक पहुँचता है। मेमसाहब ओर पारबती के प्रति महेसा का आकर्षण शारीरिक स्थूलतर तक सीमित

लगता है। लेकिन असल महेसा मेमसाहब व पारबती ही नहीं बल्कि झील के चारें ओर फैले प्रकृति सौंदर्य पर भी मुग्ध है। यह आकर्षण शारीरिक सौंदर्य का नहीं है बल्कि महेसा का यह सौंदर्य-बोध मानवीय संवेदना से निर्मित है। इसलिए तो झील पर शिकारियों को आया देखते ही परिवेश में डूबा महेसा उदास हो उठता है और वहाँ से हट जाता है। अंत में मंदिर के नाम पर इकट्ठे किए गये पैसों से झील की खरीदी सौंदर्यानुभूति की चरम स्थिति का उद्‌घाटन है। यहाँ महेसा की सौंदर्यानुभूति व्यापक करुणा में परिणत होती है। क्योकि झील को खरीद कर महेसा वहाँ शिकारियों का प्रवेश निषिद्ध कर देता है और झील पर उडते पक्षियों का शिकार बंद करवा देता है। इस प्रकार सौंदर्य भी व्यक्तिगत अनुभूति समष्टिगत स्तर को छूती हुई मानवेतर व्यापक करुणा में परिवर्तित होकर मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है।

3.2.14 साहित्य मूल्यों की त्रासदी

कमलेश्वर की 'स्मारक' कहानी व्यंग्य के स्तर पर साहित्यिक मूल्यों की त्रासदी और साहित्यकार की त्रासदी को उद्‌घाटित करती है। सांस्कृतिक परंपरा के निर्माण में साहित्य का भी योगदान होता है। परंपरागत सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ भी साहित्य में अपने स्वरूप को सुरक्षित करती हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक संदर्भ में भी साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व होता है। साहित्यकार समकालीन स्थितियों के बीच कई बार सामान्यजन को दिशा संकेत करता है। सवालों को उनके सही रूप में

प्रस्तुत कर उन के हल खोजने का प्रयास करता है। ऐसे किसी श्रेष्ठ साहित्यकार की मृत्यु के बाद उसका स्मारक बनाने की प्रथा है। इस प्रकार की प्रथा स्थापित करने का प्रयोजन यही है कि साहित्यकार जिन मूल्यों को स्थापित कर गया है, संघर्ष की जो प्रेरणा दे गया है, वह सब उसके पीछे जीवित रहे। उसके साथ ही समाप्त न हो जाए। इस प्रकार के स्मारक सहित्यिक मूल्यों की सुरक्षा में सहयोगी हो सके लेकिन आज किसी साहित्यकार की मृत्यु पर आयोजित शोक सभा या स्मारक स्थापित करने का प्रस्ताव एक क्रूर किस्म की औपचारिकता मात्र रह गयी है, जैसे हमें केवल खानापूर्ति करनी हो। इस प्रकार की सभाओं में साहित्यकार के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के स्थान पर वक्ता इस बात की कोशिश ज्यादा करता है कि अपना महत्व स्थापित कर सके। इस प्रकार उस साहित्यकार को वह नेपथ्य में डाल देता है। वह भी एक विडंबना ही है कि साहित्यकार के जीवित होने की अवस्था में उसे केवल उपेक्षा मिलती है। कहीं से किसी प्रकार का सहयोग उसे प्राप्त नहीं होता लेकिन मृत्यु के बाद उसकी शोक-सभाएँ आयोजित करने का दिखावटी प्रदर्शन हम करते हैं जो भीतर से एकदम खोखला होता है। यही नहीं उसके स्मरण संबंध में बडी-बडी घोषणाएँ की जाती हैं। लेकिन वे सारी घोषणएँ उस कार्यक्रम तक सीमित होती है। उनमें कहीं कोई सच्चाई नहीं होती । ज़रूरत इस बात की ज्यादा होती है कि साहित्यिक परंपरा में साहित्यकार की उपलब्धियों का विश्लेषण किया जाय। उसके साहित्य को जनसामान्य तक पहुँचने का प्रयास किया जाये लेकिन उसकी

मृत्यु पर दुःख प्रकट करने वाले और शोक सभाओं का आयोजन करने वाले इस दिशा में कोई प्रयास नहीं करते। इस प्रकार साहित्यकार और उसके साहित्य दोनों में से किसी के भी प्रति न्याय नहीं हो पाता। स्मारक में यही विडंबना उद्‌घाटित होती है। सलीम साहब, चंद्रभान जी, बिहारीबाबू, जितेद्रजी और भुवनेश जी आदि सभी लोग नगर के एक महान साहित्यकार की शोकसभा में बोलते हैं। लेकिन उसकी मृत्यु के बाद भी उस पर किये गये उपकार गिनना नहीं भूलते। उनका वक्तव्य सुन हम आसानी से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि इन सभी वक्ताओं के भीतर मृतक की मृत्यु के दुःख की जगह आत्म प्रशंसा की प्रवृत्ति अधिक तीव्र है।बिहारीबाबू अपने ही मकान में उनका स्मारक बनाने की घोषणा करते हैं, लेकिन दो - चार दिन बाद ही उसे किराये पर उठाने तजवीज कर लेते हैं जो इस बात का संकेत है कि शोक-सभा कितनी झूठी थी। इतना ही नहीं बल्कि मृतक की शोक सभा के बाद बिहारीबाबू चाय पार्टी का आयोजन भी करते हैं। शोक-सभा का कोई अवसाद कहीं भी दिखायी नहीं पडता। इन वक्ताओं के वक्तव्यों में प्रकट ये प्रवृत्तियाँ न केवल साहित्यिक मूल्यों के ह्रास का संकेत देती हैं बल्कि मानवीय प्रवृत्ति के निम्न स्तर की ओर बढते जाने की सूचना देती हैं।

3.2.15 आधुनिक सभ्यता में आध्यात्मिकता

कमलेश्वर की 'आत्मा अमर है' कहानी में अध्यात्म के मूल्य और आधुनिक सभ्यता को एक दूसरे के रू-ब-रू खडा कर विडंबनापूर्ण स्थिति में कथ्य को

उद्घाटित करती है। आत्मा के अमर होने की बात हमारे अध्यात्म दर्शन तथा धर्म के क्षेत्र से जुडी हुई है। लेकिन आज इस स्थापना और आस्था का उपयोग विकृत रूप में किया जाता है। क्लब और उसका पूरा वातावरण आधुनिक भौतिक भोग ऐश्वर्य का प्रतीक है। इस संस्कृति के बीच आत्मा की अमरता की बात असंगत सी लगती है। मिस्टर तथा मिसेज वासवानी और परमार आदि लोग आधुनिक सभ्यता में डूबे हुए लोग हैं। वे उस आधुनिक संस्कृति में रहते हैं , जहाँ भारतीय संस्कृति में पति-पत्नी या स्त्री पुरुष संबंधों का अपना विशिष्ट पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक मूल्य और महत्व रहा है।

लेकिन आज पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित आधुनिक सभ्यता में ये संबन्ध सतही स्तर पर मजाक के विषय बन जाते हैं और इस संदर्भ में कई बार व्यक्ति अपने आप को जस्टिफाई करने केलिए आत्मा का हवाला देने लगता है। मि. बासवानी का आत्मा के संबंधों में दिया गया प्रवचन किसी आध्यात्मिक धरातल से उद्घाटित नहीं हुआ था और न ही नारी-पुरुष संबंध के किसी गरिमायुक्त पहलू पर वे विचार प्रकट कर रहे थे। बल्कि वे केवल परमार को सबके सम्मुख अपमानित करने के निम्न स्तरीय इरादे से प्रवचन दे रहे थे। इसीके लिए आत्मा संबंधी दर्शन का उनके द्वारा उपयोग किया गया। मि. बासवानी के ही समान परमार भी आत्मा की अमरता का विश्लेषण बासवानी से बदला लेने और उन्हें अपमानित

करने की दृष्टि से करता है। इस प्रकार आत्मा की अमरता संबंधी मान्यता मजाक का विषय बनकर रह जाती है। उस वक्त ये सारे प्रवचन अर्थ हीन हो जाते हैं, जब मिसेज बासवानी परमार की नाक अपने हाथ से ठीक कर देती है और मि. बासवानी उदार होने की गरिमा ओढ लेते हैं । पूरा क्लब दोनों के बीच समझौते की खुशी में तालियाँ पीटने लगता है। लेकिन ये उदारता वृत्तिगत नैसर्गिक उदारता नहीं है, बल्कि यहाँ भी बासवानी सबके बीच उदार होने का श्रेय लूटना चाहते हैं। इस प्रकार नारी-पुरुष संबंध और भौतिक सभ्यता के संदर्भ में आध्यात्मिक मूल्यों के ह्रास और उपहासात्मक स्थिति को वह कहानी उद्‌घाटित करती है। मि. बासवानी की सभ्यता वह सभ्यता है जो दूसरों को छोटा बनाती है। मि. बासवानी को परमार और मिसेज बासवानी के संबंधों पर ऐतराज नहीं है। उनकी मूल समस्या अपनी श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करने की हैं। इस श्रेष्ठता को वे अपने व्यक्तिगत गुणों के माध्यम से स्थापित करने के बजाय अपनी तुलना में दूसरों को छोटा बनाकर स्थापित करना या प्राप्त करना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति भी अंततः मानवीय रिश्तों और मूल्यों के ह्रास का संकेत है।

'बयान' तथा 'नागमणि' कहानियाँ राष्ट्रीय मूल्यों में आस्थावान व्यक्ति की शोकान्तिका को उद्‌घाटित करती है। नागमणि कहानी राष्ट्रीय मूल्यों में आस्थावान एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो मोहभंग की स्थिति में विक्षिप्त हो जाता है।

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रभाषा के प्रसार का आदर्शा और उद्देश्य लेकर विश्वनाथ व्यक्तिगत जीवन के सारे संदर्भों को समाप्त कर देता है। लेकिन अंत में इस आदर्श की अर्थ हीनता उस के सम्मुख उद्‌घाटित होती है। दरअसल जनतान्त्रिक राष्ट्र में सरकार जनहित के प्रयोजन को ध्यान में रखकर आदर्श शासन व्यवस्था स्थापित करती है। वह जन आकांक्षाओं के प्रतीक होती है। जनता के आकांक्षाओं को पूरा करने का वचन देकर ही व पद पर आसीन होती है। जनता अपने राष्ट्र को और स्वतंत्रता की सरकार के हाथों अमानत के रूप में सौंप देती है। जिस राष्ट्र को वह अपनी वैयक्तिक सत्ता से भी अधिक स्नेह करती है उसके जनतांत्रिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए वह सरकार के से गहरी अपेक्षा रखती है। क्योंकि अंततः राष्ट्र की सत्ता ही उसकी संस्कति की पहचान बनाती है। लेकिन आज व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति में लिप्त जन नेता जन-विश्वास को ठग रहे हैं। जनता के सम्मुख केवल शासकों द्वारा पहने गये मुखौटै आते हैं। शासनतंत्र की असलियत से जनता परिचित नहीं होती।

'बयान' का फोटोग्राफ और 'नागमणि' का विश्वनाथ इन्हीं भयावह स्थितियों के शिकार हैं। यहाँ राष्ट्रीय आदर्श तथा मूल्यों और नेताओं के प्रति सारा विश्वास खत्म हो चुका है। विश्वनाथ देखता है कि जो राष्ट्रीय भाषा सांस्कृतिक मूल्यों की वाहिका है आज उसके प्रति कोई आकर्षण या महत्व शेष नहीं रहा है। सरकार की नीति के कारण विदेशी भाषा के बढते प्रभाव में राष्ट्रभाषा महत्वहीन होती जा रही

है। अपने आदर्शपूर्ण लक्ष्य की यह भयंकरतम अर्थहीनता विश्वनाथ को विक्षिप्त कर देती है। अपना पूरा जीवन राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रसार में खपा देनेवाला विश्वनाथ अंत में अंग्रेज़ी बोलने लगता है। 'बयान' का फोटेग्रॉफर भी जब व्यवस्था की असलीयत से परिचित होता है तब मोहभंग की असहनीय यातना में वह आत्महत्या कर लेता है।

कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' कहानी मानवीय मूल्यों के भयावह विघटन का नग्न यथार्थ उद्‌घाटित करती है। राष्ट्रिय ओर जनतांत्रिक मूल्यों के ह्रास से जो अर्थिक संकट जन्म लेता है उसी में से 'इतने अच्छे दिन' के बाला और कमली का जन्म होता है, जिनके सम्मुख मानवीयता के सभी मूल्य निरर्थक हो चुके हैं और एक सच्चाई सामने है जी पाने की सच्चाई अकाल की स्थिति को शायद ही कोई अच्छी स्थिति कहे। लेकिन कमली और बाला के लिए अकाल की यह डरावनी स्थिति बरदान बन गयी है, जहाँ रोज ढेरों लोग मर रहे हैं और कमली तथा बाला मरते हुए लोगों को देख खुश हो रहे हैं। क्योंकि मृतलोगों की हड्‌डियाँ ही इस वक्त उन के पेट भरने का साधन है। इसलिए लोगों की मुत्यु कामना स्वाभाविक है। रिश्तेदारों और ढोरों की हड्‌डियों के लिए बाला दूसरों से लडता झगडता है। तमाम मानवीय मूल्य देकर अच्छे दिन खरीदने के लिए दोनों मजबूर हैं। संकटग्रस्तता तथा जीवन की अनिवार्यताओं के सम्मुख समुची परंपरागत नैतिक मान्यताएँ टूट कर खत्म हो गयी

हैं। जिन स्थितियों की कल्पना भी संभाव्य नहीं थी, आज उन स्थितियों को सहज रूप में व्यक्ति स्वीकार कर रहा है। व्यक्ति अभी जीवन व्यक्ति आदर्शों, तर्कों, नैतिक मूल्यों और संबंधों आदि को ताक पर रखकर जीने की कोशिश में लगा हुआ है। 'इतने अच्छे दिन', कहानी मूल्यों के ह्रास की चरम स्थिति को उद्‌घाटित करती है तो 'दूसरी सुबह सूरज पश्चिम में निकला था' कहानी सम्भावनापूर्ण दिशा का संकेत करती है।

कमलेश्वर का जीवन विषयक दृष्टिकोण व्यक्ति- व्यक्ति के बीच, व्यक्ति तथा समाज के बीच एवम् व्यक्ति और व्यापक संस्थाओं के बीच संबंधों में उद्‌घाटित हुआ है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि लेखक ने व्यक्ति को परिवार समाज, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि संस्थाओं के बीच रखकर उसके जीवन को परखने की कोशिश की है।

'लाश' कहानी में जो वारदात घटी है और विरोधी तथा शासन यंत्रणा में जिस संघर्ष का आभास पैदा किया गया है उसकी परिणति एक आदमी की मुत्यु में हुई है। लोग सोचते हैं कि या तो मुख्यमंत्री मरे होंगे या विरोधी-दल नेता कांतीलाल। पर दोनों इनकार करते हैं कि वह लाश उनकी नहीं है। उस लाश पर कोई निशान नहीं जिससे वह पहचानी जा सके । इसलिए जाँच-पडताल की ज़रूरत नहीं है। यह प्रतीक फंतासी के स्तर पर उस यथार्थ को अपने साथ लेकर प्रस्तुत हुआ है, जहाँ

जनतांत्रिक शासन प्रणाली अपनी समूची गतिविधियों में घुमाफिराकर जनता की मृत्यु का कारण बनती है। इसमें राजनीतिज्ञों के कारण आम आदमी की मृत्यु, यह अपनी जगह शोषण का एक स्तर जरूर है।

आम आदमी ने खुशहाली का जो सपना देखा था वह सपना ही बना रहा। जीवन के सभी स्तरों पर उसके शोषण का चक्र बरकरार रहा। इसका उदाहरण 'जोखिम' में है।

'जोखिम' का लडका अपनी जीवनचर्या में निरंतर असफल होता चला जाता है। वह शहर में आया है, जैसे तैसे वह अपनी रोटी कमा लेता है। इधर दिन ब दिन महँगाई बढ रही है, उसी अनुपात में तस्करी भी उधर देश की अर्थव्यवस्था घोषणा कर रही है कि उसका हर मोर्चा आम आदमी की भलाई केलिए है। लडका अपनी माँ को किसी प्रकार की सहायता नहीं भेज सकता। माँ सख्त बीमार हो जाती है। लडका गाँव लौट आता है। देश की अर्थव्यवस्था के लिए जिम्मेदार अर्थमंत्री - मोरारजी देसाई को बुलाकर वह जवाब - तलब करता के वे प्रश्नों के जवाब नहीं है पाते। माँ धीरे-धीरे पथराने लगती है, उसकी मृत्यु हो जाती है। लोगों के कहने पर वह अपनी माँ की मूर्ती चौराहे पर खडी कर देता है। तीनों-माँ, मंत्री व लडका देश की सामाजिक व आर्थिक विभीषिका के कारण परिणामों के रूप में प्रस्तुत हो जाते हैं। माँ वह प्रजा है, जो अब भी चौराहे पर खडी रह कर भारत माता से मिलना

चाहती है। अर्थमंत्री उस यंत्रणा के प्रतीक है, जिन्होंने माता व पुत्र को बेहतर ज़िंदगी देने का जिम्मा ले रखा है। लेकिन नतीजा निराशाजनक है। लडका आम आदमी का प्रतीक है, जिसके लिए सारी शासन व्यवस्था है। लेकिन वह अब भी उसके लाभों से अछूता है। उसकी ज़िंदगी में ठहराव इतना है कि कोई भी क्रिया ज़िंदगी की निरंतरता को प्रेरित नहीं कर पाती। ज़िंदगी का हर भावनिक संदर्भ-जीवन निर्वाह की मूल आवश्यकता के साथ टकराकर बिखर जाता है। क्षतिग्रस्त जीवन रोमानी आकांक्षाओं और विकृत कुंठाओं से भर जाता है। तस्करी की जोखिम भरी रहस्यात्मक दुनिया को नजदीक से देख पाने की इच्छा इसी का परिणाम है।

इसका लडका आम आदमी का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका आज़ादी के बाद खुशहाली को लेकर भ्रमभंग हुआ है। शोषण के चक्र से वह मुक्त नहीं है। सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था कुछ ऐसी है कि जीवनचर्या के हर मोर्चा पर असफल होता है।

परिणाम अनिर्णय की भयावह स्थिति और बौखलाहट है। अतराफ की स्थितियों के कारण उसकी प्रतिकार शक्तियाँ खत्म हो जाती हैं। इसलिए सुख और दुःख के कोई खास असर उस पर नहीं होते । उसकी मानसिकता से उन तमाम प्रयासों और संघर्षों को निकालकर बाहर किया जाता है और उसकी जगह

कल्पनाजन्य साहसिकता पैदा की जाती है। तब उस व्यक्ति का हर स्वप्न दु:स्वप्न में और हर साहस दुस्साहस में तबदील हो जाता है।

कमलेश्वर की 'दूसरी सुबह सूरज पश्चिम से निकला था' में महानगरीय संस्कति में उभरे अरागात्मक व अमानवीय संबंधों के बारे में बताते हैं। इसमें बंबई की रात प्यार के खरीद-फरोख्त तथा चोरी डकैती की रात होती है। बारिश जोर की हो रही है। एक टैक्सी वहाँ रुकती है, नाव से उतरा हुआ माल, जिसमें एक लाश है, टैक्सी में रखी जाती है। एक स्त्री-पुरुष बारिश में भीगते हुए समुद्र के किनारे बैठे हैं। देर रात और तेज बारिश में इनका समुद्र के किनारे आना, सटकर न बैठना, आपस में बातें न करना इतना अनपेक्षित और अपरिचित सा है कि लेखक उनसे पूछ बैठता है कि तुम्हारे दु:ख कहाँ है? यांत्रिकता के मध्य रहकर बेनुमाइशी प्यार आश्चर्यकारक है। वे जवाब देते हैं कि इन्हीं दु:ख वे घर पर ही छोड़कर आये हैं। यह उत्तर इस बात का संकेत है कि ये लोग औपचारिकता की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष स्थितियों के दबाव से मुक्त होकर यहाँ आये हैं। अपनी भावनाआं को उन पारंपरिक परिचित बिंबों के माध्यम से प्रकट करना नहीं चाहते। पुलिस का इनसे सवाल करना और उनके जवाब में कुछ विलक्षण से उत्तर पाना फिर से इसी तथ्य का संकेत दे रहा है कि ये दोनों प्रत्याशित अभिव्क्ति की पद्धतियों से नितांत मुक्त है। लाश की घटना और प्यार की घटना परस्पर विसंगत हैं। वास्तव में लाश से जुडी

हुई चोरी ओर मृत्यु की घटना जितनी यांत्रिक और निर्वेयक्तिक है, उतनी ही प्यार से जुडे हुए प्रसंग व घटनाएँ यांत्रिक व निर्वेयक्तिक होनी चाहिए। लेकिन यहाँ ऐसा नहीं हुआ है, इसलिए लेखक को आश्चर्य होता है।

कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी में कस्बाई चेतना व महानगरीय संस्कृतियों के टकराव से उत्पन्न स्थितियों का चित्रण हुआ है। चंदर गाँव से दिल्ली आया है। परिचित व्यक्ति की तलाश में वह इधर उधर घूमता रहता है। लेकिन मानवीय संस्पर्श से अछूती यंत्रवत ज़िंदगी के उफनते सैलाब में उसको कोई परिचित व्यक्ति नहीं मिलता। यहाँ तक कि वह स्वयं अपरिचय के इस चक्र में खुद से अपरिचित होता जाता है। चंदर अपनेवालों की खोज में चौक चमन, होटल जाता है। वहाँ दोस्तों से मिलता है। पर वह ऊब जाता है। कहीं भी उसे आत्मीयता महसूस नहीं होती। उसे निरंतर अपने गाँव के लोग, होटल और परिवेश याद आते हैं। जो उसे अपने लगते थे। पूरे दिन में जितने भी लोग उसे मिले, सब अजनबीयत का उसे एहसास देते हैं। अकेलापन और तनहाई उसे मसोसती है। उसकी प्रेयसी इंद्रा ने उसके साथ जीवन भर रहने की कसम खाई थी। वह भी उसके साथ त्रयस्थ व अपरिचित के रूप में पेश आती है। चंदर को लगता है कि कम से कम उसकी पत्नी तो उसे पहचानेगी पर वहाँ भी उसे शांति नहीं मिलती। उसे डर है कि पत्नी उसके(अजनबी)स्पर्श से चौंक न जाय। बदहवासी के इस आलम में वह पत्नी को

झाँझोडता है और अपनी पहचान पूछता है। कस्बाई संस्कारों में संस्कारित चंदर दिल्ली के यांत्रिक वातावरण में हिल-मिल नहीं सकता। दिल्ली के प्रत्येक रिश्ते से जुडते समय उसे उसके कस्बाई रिश्ते याद हो आते हैं। वह इन रिश्तों की यहाँ तलाश करता है पर उसफल रहता है। इसलिए अपने आपको पराया, अजनबी और असंपृक्त महसूस करता है। लगता है नायक को कस्बाई परिवेश से मोह व लगाव है। दिल्ली आने से वह उस परिवेश से दूर हो जाता है। इसका उसे दुःख है। कस्बाई चेतना को छोडने की मजबूरी और नागरी बोध को स्वीकार करने की अनिवार्यता को एक उन्हें निभाना पडता रहा।

निष्कर्ष

कमलेश्वर का सामाजिक दृष्टिकोण पारिवारिक संस्था और स्त्री पुरुष संबंधों के संदर्भ में उद्‌घाटित हुआ है। कहानियों के अंतर्गत पारंपरिक मूल्यों के विघटन और आर्थिक संकट के कारण परिवारों टूटते जाने और परिवार इकाई की सत्ता के समाप्त होते जाने की प्रक्रिया प्रस्तुत हुई है। स्त्री पुरुष संबन्धों के अन्तर्गत लेखकीय संवेदना परिवर्तित बोध को लक्ष्य बनाती हुई स्त्री मुक्तिकोण को प्रस्तुत करती है। इसके साथ-साथ आरोपित स्वरूप तथा रूढमूल्यों से मुक्त होकर अपनी व्यक्तिसत्ता की सुरक्षा, अपनी पहचान की तलाश तथा पूर्णत्व की खोज में लगे हुए स्त्री-व-पुरुष के बीच बदलते संबंधों को व्यक्त करती है।

कमलेश्वर का राजनीतिक दृष्टिकोण प्रत्यक्ष राजनीतिक संदर्भों और आम आदमी की परिणति के कोणों में उद्‌घाटित हुआ है। भ्रष्ट और अराजक शासन व्यवस्था में आम आदमी की भयावह जीवन-स्थितियाँ अभिव्यक्त हो सकी हैं। महानगर बोध पर लिखी कमलेश्वर की कहानियाँ महानगरों की अमानवीयकरण की प्रक्रिया में मानवीय संबंधों की आहत स्थिति को प्रकट करती हैं और मशीनीकरण की उस प्रक्रिया को उद्‌घटित करती हैं जो व्यक्ति को यंत्रमात्र बनाती जा रही है। कमलेश्वर की संवेदनशीलता सांस्कृतिक संदर्भों के अनेक कोणों में उद्‌घटित हुई है। साहित्यिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास की प्रक्रिया को व्यक्त करती हुई लेखकीय संवेदना अंत में मानवीय मूल्यों के विघटित होने के विभीषिका को उद्‌घाटित करती है। साथ ही साथ सम्भाव्य दिशाओं का संकेत भी देती है।

कमलेश्वर के उपन्यासों में जीवन मूल्य

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में युगीन समाज को पूरे यथार्थ के साथ चित्रित किया है। इसके साथ ही उन्होंने व्यक्ति की मानसिक चेतना को सशक्त रूप से चित्रित किया है। उन्होंने अपने उपन्योसों में चित्रण के लिए जीवन का विशाल पट चुना है एवं विभिन्न परिपार्श्व की उनकी यथार्थ वादि दृष्टि ने अत्यंत सूक्ष्म तथा सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

कमलेश्वर के सभी उपन्यास अपने आकार और प्रकार में लघु हैं, पर इन लघु आकारी उपन्यासों में मध्य वर्गीय परिवारों के संस्कारों, कुंठाओं और आर्थिक, सामाजिक विषमताओं का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है। कमलेश्वर के चरित्र, जीवन में हर स्थल पर संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। जिस सामाजिक स्थिति में ये चरित्र रह रहे हैं उसे बेहतर इस स्थिति के लिए उनकी संघर्ष जारी है। जिन्दगी के अभावों के लड़ते हुए अनेक चरित्र जीवन और अधिक बेहतर बनने की कोशिश करते हैं, यदि हम सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर उनके एक-एक उपन्यासों का अध्ययन करे तो हर उपन्यास में इस देश के आम आदमी का सामाजिक संघर्ष ही दिखाई देगा।

कमलेश्वर के कुल तेरह उपन्यास हैं। वे हैं-

1. एक सड़क सत्तावन गलियाँ (1961)

2. डाक बंगला (1962)

3. लौटे हुए मुसाफिर (1963)

4. तीसरा आदमी (1964)

5. समुद्र में खोया हुआ आदमी (1965)

6. काली आँधी (1974)

7. आगामी अतीत (1976)

8. वही बात (1980)

9. रेगिस्तान (1988)

10. सुबह दोपहर शाम (1992)

11. कितने पाकिस्तान (2000)

12. एक और चन्द्रकान्ता (दो भाग)(2002)

13. अनबीता व्यतीत (2004)

कमलेश्वर के उपन्यासों को मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर निम्न लिखित ढंग से विभाजित किया जा सकता है-

1. सामाजिक उपन्यास

2. राजनीतिक उपन्यासं

3. ऐतिहासिक उपन्यास

4. तिलिस्मी उपन्यास

कमलेश्वर के सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत 'एक सड़क सत्तावत गलियाँ', 'तीसरा आदमी', 'डाक बंगला', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'आगामी अतीत', 'वही बात', और 'अनबीता व्यतीत' आते हैं। उनके 'लौटे हुए मुसाफिर', 'काली आँधी', 'सुबह ... दोपहर .... शाम', 'रेगिस्तान' आदि राजनीतिक उपन्यासों की कोटि में आते हैं। 'कितने पकिस्तान' ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में आते हैं लेकिन यह तो राजनीतिक और सामाजिक श्रेणी में भी आते हैं। 'एक और चन्द्रकान्ता' (दो भाग) तिलिस्मी उपन्यास है। कभी-कभी इसमें ऐतिहासिकता भी देखने को मिलते है।

3.3. सामाजिक उपन्यास

3.3.1 एक सडक सत्तावन गलियाँ

सन् 1956 में प्रकाशित कमलेश्वर का प्रस्तुत उपन्यास प्रकाशक की भूल के कारण 'बदनाम गली' नाम से प्रकाशित था। यह कमलेश्वर की ऐसी रचना है जिसमें प्यार है, दोस्ती है. भाई चारे हैं, दुःख है, क्रोध और नफ़रत भी।

कमलेश्वर ने 'एक सडक सत्तावन गलियाँ' शीर्षक उपन्यास में स्वतंत्रता के पूर्व और बाद अपने ही कस्बे मैनपुरी में आए परिवर्तनों को बखूब प्रस्तुत किया है। इसके पात्र बाजामास्टर, मास्टर हबीब तथा संपादक निर्मोही व्यक्तियों में से थे। मास्टर हबीब ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर हिन्दू और मुस्लिमों के सांप्रदायिक दंगों को रोकने का कार्य किया था। आज़ादी के बाद उसी मास्टर हबीब को सांप्रदायिकता ने

प्रताड़ित किया । उनका जीवन ही नष्ट किया गया। उन्हें पेट की आग बुझाने के लिए दर- दर भटकना पड़ा। वे किसी भी धन्धें में सफल नहीं हो पाये।

प्रस्तुत उपन्यास में नायक सरनाम सिंह और नायिका बंसिरी के मानसिक द्वन्द्व का परिचय हमें मिलता है। उनकी अहंवादिता एक दूसरे से अलग कराते गैं। सरनाम का बंसिरी के प्रति सच्चा प्रेम था। आखिर सरनाम की उदारता ने बंसिरी को परास्त किया।

अवहेलना, अपमान और दुःख सहन करनेवाली बंसिरी एक ऐसी नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जिस वर्ग की नारियों को जीने के लिए शरीर का सौदा करना पड़ा। आखिर बंसिरी पाँच सौ रुपये में बेची गयी।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आकार में लघु है पर विस्तार में काफी बड़ा है। इस उपन्यास की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें पात्रों की संख्या बहुत अधिक है और उन तमाम पात्रों के बारे में प्रामाणिक जानकारी दी गई है । यह सच है कि इस रचना के नायकत्व का ह्रास हो गया है, जिसे सरनाम सिंह, रंगीले तथा शिवराज के खंडित व्यक्तियों में ढूँढा जा सकता है। इसी भाँति बंसिरी, कमला एवं हेमा का संयुक्त स्वरूप ही नायिका पद की पूर्ति करता है।

इसमें बंसिरी के ज़रिए नारी जीवन की विसंगति का चित्रण है तो सरनाम द्वारा मानवीय जीवन- मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात

वहाँ के लोगों के जीवन स्तर पर बदलाव के स्थान पर बिखराव ही हुआ है। आध्यात्मिकता के 'ढोंग' को दिखाया है। साथ-ही-साथ-उपन्यासकार का समाजवादी स्वर भी इस में मुखरित हुआ है। इस उपन्यास में प्रतिफलित प्रमुख समस्यायें निम्न लिखित हैं-

3.3.1.1 नारी जीवन की विसंगति

महानगरीय जीवन में व्याप्त नारी- जीवन की विसंगति जैसा चित्रण कस्बाई जीवन में भी दिखाई देता है। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' की बंसिरी जीने के लिए नौटंकी कलाकार बन जाती है। प्रथम प्रेमी और पहली बार उसे भोगनेवाला पुरुष सरनाम कभी उसके साथ नहीं रह पायी। असफल प्रेम बंसिरी के दुःखद जीवन का मूल कारण था। लेखक ने इस उपन्यास में असहाय और मज़बूर नारी की खरीद बिक्री की बात को मार्मिकता से चित्रित किया है। समाज में नारी को निम्न स्तर का जीवन मिलते आया है। बंसिरी को, गेंदा कवि, रंगीले को पाँच सौ रुपये में बेचा है। इससे भी आगे असहाय नारी का अपमान का चित्रण लेखक ने किया है। पुरुष वर्ग नारी के प्रति कुदृष्टिकोण का लेखक ने अभिव्यक्त किया है। सरनाम रंगीले के लिए बंसिरी को तो खरीद लेता है, पर उसके पास पूरे पाँच सौ रुपये नहीं होते हैं, वह चार सौ के नोट गेंदा के हाथ में देते हुए कहता है "…….एक सौ कम है, जब तक ये रुपया पूरा नहीं चुका देता तब तक तू इसे रख ।"[19] मानो बंसिरी कोई निर्जीव चीज़ हो, कीमत चुकाने तक उसका उपयोग किया जाए। पुरष वर्ग स्त्री को हमेशा भोग्य वस्तु के रूप

में ही देखता आया है। बंसिरी भी जानवर की तरह बेची गई। अनेक पुरुषों को भोग्या, उसकी आत्मनिष्ठा कुचली गई।

3.3.1.2 कस्बाबोध

कस्वा बोध की पृष्ठिका पर लिखा गया 'एक सड़क सत्तावत गलियाँ' एक ऐसा उपन्यास है जो आधुनिक युगीन परिवर्तनों का संकेत करता है। इसके साथ इन परिवर्तनों की व्यक्ति के मन पर प्रतिक्रिया को उद्‌घाटित करता है। प्रमुख रूप से कस्बे का जीवन ही उपन्यास में उद्‌घाटित हुआ है। कस्बे का परिवेश, इस परिवेश में रहते लोग, इन लोगों के सुख- दुःख उनके जीवन जीने के तरीके, आदि का उपन्यास में विश्लेषण किया गया है। कस्बा संस्कृति में संस्कारित व्यक्ति अपने परिवेश से पूरी तरह संलिप्त होता है। कस्बा संस्कृति की विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व का अभिन्न हिस्सा बन जाती हैं। उसी में वह अपने जीवन का रास्ता तय करता चलता है। अपनी भावात्मक दुनिया, आर्थिक संघर्ष और आसपास के लोगों से सम्बन्ध आदि जीवन के सामान्य रूप में वह अपने आपको ढाल लेता है। समूचे परिवेश से और वहाँ के लोगों से वह भावात्मक स्तर पर जुड़ा हुआ होता है।

3.3.1.3 मशीनीकरण की समस्यायें

आधुनिक युग की परिवर्तनों ने कस्बे को भी प्रभावित किया है । इन परिवर्तनों ने स्वाभाविक रूप से कस्बे के जीवन और परिवेश को बदल दिया। परिवर्तन के प्रति स्वागतमयी मुद्रा होने के बावजूद इस परिवर्तन के कारण कई लोगों के सामने

कामधाम की समस्या खड़ी हो गयी । यन्त्रीकरण की प्रक्रिया ने कस्बाई- जिन्दगी के पैटर्न को भी बदल दिया। परिणामस्वरूप स्वागत योग्य होने के बावजूद यह परिवर्तन दो स्तरों पर लोगों के लिए कुछ भारी हो गया। एक ओर आजीविका की समस्या इसने उत्पन्न की, तो दूसरी ओर परिवेश के बदलाव से मानसिक अस्वस्थता की अनुभूति हुई। इस प्रकार गाँव – कस्बे की पीठिका पर सामान्य व्यक्ति के जीवन संघर्ष को उपन्यास में अभिव्यक्ति मिली है।

3.3.2 डाक बंगला

'डाक बंगला' कमलेश्वर का बहुचर्चित और प्रसिद्ध दूसरा सामाजिक उपन्यास है , जिसका सन् 1962 में प्रकाशित हुआ है। इस लघु उपन्यास में कमलेश्वर ने पूर्व दीप्ति पद्धति का प्रयोग 'इरा' नामक युवती की आप बीती को आत्म कथात्मक शैली में बहुत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास में इरा नामक एक लड़की की व्यथा- कथा है। वह बचपन में ही माता को खो बैठती है। यह मातृहीना लड़की भटकाव का आखेट होती है और इस क्रम में वह नारी के आदर्श को भूल जाती है। यद्यपि उसका प्रेमिल संबंध विमल से है, किन्तु उसके जीवन में और कई पुरुष आते हैं।

उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इसका आरंभ आकर्षक होने के साथ - साथ यह भेद भी खोल देता है कि उपन्यास में नायिका तो केवल एक है लेकिन उसके नायक अनेक हैं।

अभी जो उसके साथ है वह है तिलक नामक युवा, लेकिन उसका पहला प्रेम था विमल। 'इरा' स्वयं स्वीकार करती है कि सभी ने उसके साथ विलास किया है। उसने अपनी जीवनगाथा तिलक को सुनाई थी। लेकिन अपने जीवन की सच्चाई बताने से पहले वह अपने मन की सच्चाई बताने से भी नहीं रह पाती। उसके जीवन में अनेक आए हैं। लेकिन उन अनेक की कहानी बयान करने के पूर्व वह तिलक से कहती है।

3.3.2.1 नारी शोषण

आधुनिक युग में अन्य मान्यताओं के समान नारी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। कहा जाता हे कि इस युग की नारी अपेक्षतया अधिक स्वतन्त्र, स्वावलम्बी और समर्थ है। अब वह इतनी अबला नहीं है कि पुरुष उसका शोषण करें और न अब वह केवल भोग की वस्तु रह गयी । नारीमुक्ति- आन्दोलन के पक्ष में इस प्रकार के तर्क दिए जाते हैं। यह सही है कि नारी की स्थिति में फ़र्क आया है। उसकी बौद्धिक और मानसिक सामर्थ्य को विकसित होने के अवसर मिल रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों में अपनी योग्यता के प्रमाण वह दे रही है। लेकिन इन सारे परिवर्तनों के बावजूद नारी के जीवन की त्रासदी समाप्त नहीं हुई है। 'डाक बंगला' की इरा एक ऐसी ही नारी है,

जो जीवन भर भटकने के बाद भी कहीं स्थायित्व नहीं पा सकती और अपने आप में डाक बंगला और मुसाफिर होने बन जाती है। विमल, बतरा, सोलंकी, डॉक्टर और तिलक ये सारे पुरुष उसके जीवन में डाकबंगले के मुसाफिरों की तरह आते हैं। कुछ दिन ठहर कर चले जाते हैं। इन में से कोई भी न तो इरा को ठीक से समझ पाता और न उसके जीवन में कोई स्थायी जगह बनाता । इस व्यक्ति अपनी ज़रूरत के मुताबिक उसका उपयोग करना चाहता है। अपने अनुसार उसे ढालने या बदलने केलिए मज़बूर करता। इरा की किसी भी इच्छा- अनिच्छा का ख्याल किये बगैर उस पर एकाधिकार जताना चाहता है। इस प्रकार इरा का जीवन पुरुष संस्था से टकराकर टूटता बिखरता जाता है।

3.3.2.2 पारिवारिक विघटन

यांत्रिकता, महँगाई, व्यस्तता, मूल्यहीनता, और साधनों की कमी आदि के कारण स्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों में दरारे आ गई है। स्त्री पुरुष सम्बन्ध भी इन्हीं कारणों से प्रभावित हुए हैं। फलस्वरूप नारी में अपने स्वाभाविक तथा अधिकार चेतना की जागृति प्रमुख हुई। स्त्री- पुरुषों के बदलते सम्बन्धों का एक अन्य रूप 'डाक बंगला' उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास की नायिका इरा शादी किये बगैर, कभी- विमल, कभी महेन्द्र, बतरा और कभी मेजर सोलंकी के साथ जीवन व्यतीत करती रहती है। इसके पीछे अर्थ ही महत्वपूर्ण कारण रहा है।

'पेड वाईफ' का जीवन बिताने वाली शीला के जीवन में पैसा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारत- पाक बँटवारे के समय शीला अपनी बहिनों तथा माँ को बचाकर किसी प्रकार भारत ला सकी थी। इस बीच आर्थिक कठिनाईयों के कारण वह शरीर-व्यापार करने पर मज़बूर हो जाती है। वह माँ से बहाना बनाती है कि उसकी नौकरी दौरे पर रहने की है। घर से कई महीने बाहर रहकर कोई नौकरी नहीं करती बल्कि भिन्न- भिन्न व्यक्तियों की अस्थाई बीवी बनकर रहती है। जब तक वे चाहते तब तक उनके पास रहती है। यही उसकी नियति बन जाती है। "...वह घर में बीवी का नकाब लगाकर रहती है और घर का इस तरह ध्यान रखती है जितना की बीवियों भी नहीं रख सकती । अपनी शारीरिक एवं आर्थिक जरूरतों को पूरा करने का यही एक साधन इसके पास।"[20]

शीला – एक 'काल-गर्ल' की भाँति घर- घर में पति- पत्नी का खेल खेलती है। इसके बदले में उसे आर्थिक समाधान प्राप्त होते हैं । वह शुद्ध रूप में व्यावसायिक स्तर पर काम करती है। उसी प्रकार इरा को भी शीला की भाँति भिन्न- भिन्न कई पुरुषों की काम - वासना की तृप्ति करनी पड़ी थी। इसमें चित्रित बदलते सम्बन्धों का नमूना नितांत अति आधुनिक है जिसमें नारी ड़ाक बंगला बन गई है, जहाँ कोई स्थाई रूप से नहीं रहता।

3.3.3 तीसरा आदमी

सन् 1964 में रचित 'तीसरा आदमी' नामक लघु उपन्यास में कमलेश्वर ने मध्यवर्गीय परिवार के दाम्पत्य जीवन का चित्रण अंकित किया । यह बिलकुल सीधी - सादी और अत्यन्त सहज शैली में लिखी हुआ उपन्यास है।

नरेश, चित्रा, सुमन्त आदि इसके प्रमुख पात्र है। यह उपन्यास एक तरह से प्रेम के त्रिकोण- स्वरूप को रेखांकित करता, किन्तु भिन्न अर्थ में। यह अत्यंत ही निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। महानगर के एक छोटे - से कमरे में एक पति – पत्नि अपना जीवन निर्वाह करते है।

आर्थिक स्थिति ऐसी है कि एक तीसरा आदमी के साथ उसी छोटे कमरे में रहना पड़ता है। कुछ दिनों बाद ही पति - पत्नि में तनाव उत्पन्न हो जाता है। पति को पत्नी पर संदेह होने लगता है। पत्नी है चित्रा और तीसरा आदमी है सुमन्त। नरेश का एक तीसरे आदमी के शक के कारण वैवाहिक जीवव टूट जाता। इस उपन्यास की बड़ी विशेषता यह है कि पति - पत्नी के बीच किसी तीसरे आदमी के आने की प्रचलित कहानी को लेखक वे एक ऐसा सामाजिक एवं आर्थिक आयाम प्रदान किया है जिससे यह उपन्यास मध्यवर्गीय दांपत्य की ऊँच- नीच का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ बन जाती है। आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया प्रस्तुत उपन्यास काफ़ी हद तक सफल कहा जा सकता है। इस में प्रतिफलित प्रमुख समस्यायें है-

3.3.3.1 नगरीकरण का प्रभाव

नगरीकरण आधुनिक मानव जीवन को जिस तरह प्रभावित करता है और उसके जीवन को तनावपूर्ण बनाता है, ये समस्यायें प्रस्तुत उपन्यास में देखी जा सकती हैं। उपन्यास के नायक नरेश नगरीकरण को अपनाने में असफल होता दिखाई पड़ता है। लाभेच्छा ही उसे दिल्ली महानगर की ओर खींचता है। शादी के बाद नरेश और चित्रा नये- नये सपने बुनने लगते हैं। दोनों वही दुनिया चाहती हैं जहाँ सभी अपरिचित हो। घर में या अपने गाँव इलाहबाद में सभी लोगों से परिचित होने के कारण स्वतन्त्र होकर घूमना-फिरना दोनों के लिए मुश्किल हो जाता है। नरेश को ख्याल आता है, ''सचमुच में उन दिनों इसी तरह के सपने देखा करता था। लगता था कि बेहतर दुनिया के दरवाज़े मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं जिन्हें मुझे खोलना है और वे दरवाज़े दिल्ली में ही है। इलाहबाद में अब कुछ और होता दिखाई नहीं पड़ता था।''[21] लेकिन नरेश के घरवाले नगर बोध से अछूत रहते हैं। ''आजकल के लड़के तो अंग्रेज़ हैं अंग्रेज़। यही गनीमत नहीं है क्या, कि हाथ मिलाकर शादी नहीं कर लाए...।''[22] गांववालों में एकता का भाव हमेशा होता रहता है। उसका परिवार ऐसा है कि उसमें रहते हुए कभी अपने अलग घर की कल्पना नहीं कर सकती। घर में कोई भी चीज़ आती है तो घर के लिए आती है। किसी के नाम लिखकर नहीं।

पुराने ज़माने में घरों में दादा- दादी, माता- पिता एवं पुत्र – पुत्रि एक साथ रहते थे। संबंधों को बड़ा स्थान देता था। बच्चे बड़ों का आदर करते थे। लेकिन आधुनिक युग में बड़े परिवार का संकल्प टूट गया। उसके स्थान पर अणु कुटुंब या छोटा परिवार आ गया। परिणाम स्वरूप रिश्तों का स्थायित्व टूट गया। आज नगरीकरण ने मनुष्य को स्वार्थी बनाया है।

3.3.3.2. अकेलापन

आदमी अकेलापन महसूस करना नहीं चाहता। नरेश भी अकेलापन से पीडित है। ‘‘शादी के बाद से तो और भी अकेला महसूस करने लगा था। लगता था जैसे दुनिया ही बदल गई है। दोस्तों का रवैया बदल गया था। उन्हें लगता था कि मैं उनके साथ लायक नहीं रह गया हूँ।’’[23]जब नरेश चित्रा को छोड़कर चला जाता है, तो वह अकेली रह जाती है। यह अकेलापन ही उसे सुमन्त की ओर आकर्षित कराती है। इसलिए नरेश पटना जाने की धमक्कियाँ देते वक्त चित्रा उसे नहीं रोकती हैं। अपने अकेलेपन से मुक्ति पाने केलिए चित्रा स्कूल में अध्यापिका के रूप में काम करने का निश्चय करती है और अपना काम छोडकर दिल्ली से पटना जाना नहीं चाहती है। उसको मालूम है कि दिल्ली जैसे महानगर में खर्च इतना अधिक है कि बेकार रहने से दैनिक जीवन मुश्किल हो जाएगा।

अपने अकेलापन से मुक्ति पाने नरेश और चित्रा इलाहाबाद से दिल्ली जाने का निर्णय लेते हैं। दिल्ली पहुँचने के बाद चित्रा को अकेली रहनी पड़ती है। सुबह होते ही सुमन्त और नरेश चले जाते हैं, शाम को लौट आते हैं। दिन भर अकेली रहने के कारण चित्रा किसी न किसी नौकरी करना चाहती है। सुमन्त उससे कहता है, ''प्रेस के प्रूफ पढ़ दिया करो.... कुछ पैसा भी आ ही जाएगा।''[24] प्रेस का प्रूफ पढ़ते – पढ़ते दोनों में झगड़ा शुरू होता है और यही परस्पर आकर्षण में समाप्त हो जाता हैं।

चित्रा अकेलेपन को आधुनिकता का हिस्सा समझकर इसे स्वीकार करती हैं नहीं तो वह नरेश के साथ ज़रूर पटना जाती। चित्रा आधुनिक नारी है जो अपने अस्तित्व की खोज निरन्तर करती रहती है। अकेलापन उसे ऐसा बना दिया कि हर संघर्ष को धैर्य समेत सामना करें। आधुनिकता मनुष्य को अपना अस्तित्व ढूंढने के लिए प्रेरित करती हैं। उसे अच्छी तरह मालूम है कि अपनी ज़िन्दगी के सफर में वह अकेली मुसाफिर है। अपना रास्ता ढूँढकर जाना उसकी नियति है। जो मनुष्य इस नियति को अपने जीवन का अंश मानता है वही आधुनिक युग में विजय हासिल कर सकता है।

दिल्ली में एक ही कमरे में बैठते- बैठते तीनों की सांसें घुटती थी। लेकिन अकेलापन में चित्रा को छोटा- सा कमरा ही आश्वासन देता है। सुमन्त का अकेलापन उसे आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है। उसके चारों ओर तीसरे आदमी की

छाया मंडराती है। अकेलापन व्यक्ति के जीवन को जिस तरह प्रभावित करता है, इसका चित्रण इसमें स्पष्टतः दिखाई पड़ता है।

3.3.3.3. वैयक्तिकता

आधुनिक मानव वैयक्तिक भावनाओं से युक्त है। नरेश के परिवार की विशेषता यह है कि वहाँ स्वार्थता का अंश भी दिखाई नहीं देता। कोई भी चीज़ घर में आती है तो 'घर' केलिए आती थी, किसी एक के नाम लिखकर नहीं। नरेश के बाबूजी ने जिस वक्त साइकिल खरीदी थी, तो वह भी सिर्फ उनके लिए नहीं घर के लिए खरीदी थी। जब नरेश की शादी की बात चलती तो वह जैसे घर में बहु लाने का एक माध्यम बन गयी। सभी का व्यक्तित्व घर के लिए समर्पित था।

वैयक्तिकता हमें एहसास की गहराईयाँ देती है। टूटे हुए परिवारों में जहां पति-पत्नी का ही घटक रह गया है, यह गहराई एक अनिवार्यता बन गई है। नरेश के साथ यही मुश्किल थी कि वे दोनों एक दूसरे के पूरक बनने केलिए, पहचानने के लिए कुछ और वक्त गँवाने को मंजूर थे।

जब नरेश के मन को संशय घेर लेता है, तब उसके मन में वैयक्तिक भावनाएँ उभर आती है। वह दिन- ब- दिन अपने असंतुलित होते हुए संबंध और निरन्तर भरती हुई खामोशी भोगता रहता है।

3.3.4 समुद्र में खोया हुआ आदमी

यह उपन्यास महानगरीय जीवन पर आधारित है। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय परिवार के बदलते हुए परिवेश में आर्थिक विषमताओं के कारण टूटकर बिखरती हुई जिन्दगी का सहज चित्रण संवेदनात्मक धरातल पर किया है।

यह मात्र 67 पृष्ठों का उपन्यास है। इस में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि आर्थिक दबाव मानवीय मूल्यों को तोड़ रहे हैं, तथा निम्न मध्यवर्ग उसे जीवित रखने का असफल प्रयास करता है, समूद्र यहाँ प्रतीक है समाज का । ऐसा समाज जहाँ दो शाम की रोटी भी मुश्किल से जुटती है। वीरेन इसका मुख्य पात्र है, जो इस समुद्र में खो जाता है। अपने घर- परिवार के मध्य लौटने में सक्षम नहीं होता। यह समुद्र वीरेन के समान आर्थिक तंगी से ग्रस्त कितने लोगों को निगल जाता है। एक नहीं, कई आदमी इस समुद्र में खो जाते है।

3.3.4.1 आर्थिक संकट

स्वतन्त्रता के बाद जिस आर्थिक संतुलन की आशा और उपेक्षा थी, वह स्थापित नहीं हो सका। इसके विपरीत देश की आर्थिक – स्थिति विषम होती गयी और मध्यवर्गीय परिवारों पर आर्थिक संकट तलवार की तरह लटकने लगा। इधर राष्ट्र के नवनिर्माण और विकास की प्रक्रिया महानगरों में प्रारंभ हुई। परिणाम स्वरूप बहुत बड़ा वर्ग आर्थिक सन्तुलन और आरामदेह ज़िन्दगी की खोज में महानगरों की

ओर चल पड़ा। इन महानगरों में आधुनिकता और वैज्ञानिक विकास के कारण यंत्रकेन्द्रित संस्कृति पनप रही थी। भारत के मध्यवर्गीय परिवारों का संकट बिन्दु यहीं पर जन्म लेता है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में आर्थिक संकट के शिकार मध्यवर्गीय परिवार के टूटने की प्रक्रिया का अंकन है। श्यामलाल का परिवार अपनी व्यापक पृष्ठिका में भारत के समूचे निम्न मध्यवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करता है। आर्थिक संकट के कगार पर खडे एक ऐसे परिवार के मुखिया है श्यामलाल। परिवार को चला पाने की क्षमता खो चुकने के और परिवार के लिए निरर्थक हो जाने के बावजूद वे परिवार को अपने नियन्त्रण से मुक्त करने के लिए तैयार नहीं है। वर्तमान समाज में पारिवारिक सम्बन्धों को बनाए रखने एवं बिगाडने वाली चीज 'अर्थ' ही है। अपनी पत्नी से श्यामलाल का उक्त कथन इसकी पृष्टि करता है- ''यह शहर ऐसा है बिना पैसे के यहाँ कोई पहतचानता ही नहीं। पैसे पास है तो, दुनिया अपनी है, नहीं तो कोई साला....।''[25]

श्यामलाल के मध्यवर्गीय संस्कारों के कारण परिवार की अन्य इकाईयाँ तारा और समीरा निष्क्रिय रहने को विवश हैं। अपने व्यक्तित्व को गतिमान कर वे परिवार के लिए सार्थक इकाई बनना चाहती है पर श्यामलाल को इसमें अपनी पराजय लगती है। अपनी सामर्थ्य हीनता को जान लेने के बाद वे परिवार के संरक्षक के रूप में वीरेन को देखते हैं। लेकिन वे जैसा सोचते हैं वैसा नहीं होता। स्थितियाँ क्रूर होती जाती है। वीरेन के रूप में भविष्य की एक उम्मीद उनके भीतर थी, लेकिन वह भी

उसकी मृत्यु के बाद समाप्त हो गयी । ''अब लाख बातें हों..... मैं तो बरबाद हो गया.... हाय बेटा, कुछ तो सोचा होता। कैसे काटेगी यह पहाड़ - सी जिन्दगी।''[26] अब श्यामलाल पूरी तरह मजबूर हो गये। आर्थिक संकट के कारण परिवार धीरे- धीरे टूटता गया।

श्यामलाल की पत्नी रम्मी आर्थिक संकट के कारण अपनी बेटी तारा के घर नौकरानी की तरह रहने लगती है। समीरा हॉस्टेल में चली जाती है और श्यामलाल चौकीदार की नौकरी करने लगते हैं। और अपनी पत्नी तथा बेटी से किसी मेहमान रिश्तेदार की तरह मिलने केलिए आते हैं। इस प्रकार महानगरीय संस्कृति और आर्थिक संकट के नागपाश में फँसा श्यामलाल का परिवार निरन्तर टूटता गया है।

3.3.4.2 पुरुष केन्द्रित पारिवारिक व्यवस्था

पुरुष सत्ता नारी के आर्थिक स्वावलम्बन को स्वीकार नहीं कर पाती। स्वतन्त्रता के बाद जब तेजी से हालात बदल रहे थे, जब हर क्षेत्र एक नये सन्तुलन की माँग कर रहा था, तब भी पुरुष ने अपने संस्कारों को बदलने की कोशिश नहीं की। परिवार के मुखिया होने का उसका दुराग्रह ज्यों कत्यों बरकरार रहा, परिवार की अन्य इकाइयों को सक्रिय होने से वह रोकता रहा।

श्यामलाल परिवार को चला पाने की क्षमता खो चुकने के और परिवार केलिए निरर्थक हो जाने के बावजूद परिवार को अपने नियन्त्रण से मुक्त करने के लिए

तैयार नहीं है। उनके मध्यवर्गीय संस्कारों के कारण परिवार की अन्य इकाइयाँ तारा और समीरा निष्क्रिय रहने को विवश हैं। अपने व्यक्तित्व को गतिमान कर वे परिवार के लिए सार्थक इकाई बनना चाहती हैं। पर श्यामलाल को इलमें अपनी पराजय दिखायी देती है। इस प्रकार अपने इस मुखिया होने के बोध के कारण अन्त में पारिवारिक सत्ता के विघटन का श्यामलाल कारण बन जाते हैं।

3.3.5 आगामी अतीत

कमलेश्वर पूंजीवाद के घोषित विरोधी हैं। उनकी अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धताएँ हैं। उनको लेकर कुछ नहीं कहा जा सकता। अपने- अपने विचारों के संबंध में सभी व्यक्ति स्वतंत्र हैं। पुस्तक की छोटी- सी भूमिका में लेखक ने स्वयं स्वीकारा हैं कि पूंजीवादी समाज के स्पर्धामूलक परिवेश की विडंबना को इस पुस्तक का विषय बनाया गया है। उनका मानना है कि पुस्तक में प्रयोगवाद की उपस्थिति का भ्रम हो सकता है किन्तु भारतीय मध्यवर्गीय जन- जीवन की आपाधापी की सच्चाई भी यही हैं।

उपन्यास की कहानी रोमांटिक है। रोमांस कमलेश्वर का प्रिय विषय रहा है। लेकिन इस पुस्तक के रोमांटिक कथ्य का वह बचाव करते नज़र आते हैं। भूमिका में ही उन्होंने स्पष्ट किया है कि इसका कथ्य रोमांटिक जो लगे परन्तु इस रोमांटिकता के अन्दर से जो टीस उभर कर आती है उसके संदर्भ खासतौर पर सामाजिक- आर्थिक

निर्भरताओं से जुड़ाब रखते हैं। लेखक का तात्पर्य यह है कि सामाजिक- आर्थिक निर्भरताओं की स्थिति में रोमांटिक स्थितियों का जन्म लेना स्वाभाविक है।

कहानी दार्जिलिंग के एक होटल से शुरू होती है। कमल बोस अलग एक बड़ी- सी कार में सवार होटल के पोर्टिकों में पहूंचते हैं। उन्हें रूम नं.25 आबंटित होता है। मैनेजर पहले उसी कम्पनी का सोल्समैन था, जिसके वे मालिक हैं। वह कहता है कि मैं सात साल पहले आपके यहाँ से काम छोड़कर आ गया और अब यहाँ पर रिजर्वेशन मैनेजर हूँ। कमल बोस ने कहा, बहुत अच्छा किया। कमल बोस भी रोज़- रोज़ की ज़िन्दगी से जिसमें केवल रसायनों – क्लोरिन और तेज़ाब की गन्ध शामिल थी से ऊब कर दार्जिलिंग में आराम करने पहूँचे थे।

रात को सोने का प्रयास किया लेकिन ठीक से नींद नहीं आई। सुबह चाय पीकर लोअर बाज़ार की तरफ घूमने निकल गए। लोअर बाज़ार में बहुत परिवर्तन हो गया था। वह पच्चीस वर्षों बाद दार्जिलिंग आए थे तो सब कुछ का बदल जाना स्वाभाविक था। कुछ दिनों तक यों ही समय कटता रहा लेकिन उन्हें चन्दा की याद आती रही। पच्चीस वर्ष पहले की घटना है। वह यहाँ परीक्षा की तैयारी करने के लिए आए थे। सीढ़ियों से लुढ़कने के कारण टांग में मोच आ गई थी। वह इलाज कराने एक वैद्य के यहाँ गए थे। उनका नाम था दिल बहादुर थापा। वैद्य ने दवा लगा दी थी और पट्टी बांधकर कहा था कि इतने से ही सब ठीक हो जाएगा। कल तक चलने

लगोगे। वैद्य जी के यहां उन्होंने उनकी लड़की चन्दा को देखा था। चन्दा को वैद्य जी ने आवाज़ दी थी पर वह बाहर नहीं आई थी।

कमल बोस दो – एक दिनों में जंगल की एक खुली जगह के एकांत में पढाई करने जाने लगे। एक दिन चन्दा वहीं मिली थी। वह उसे देखकर हँसती रही थी और कहा था तुम वही हो न जो एक दिन सीढ़ियों से गिरे थे और तब सब लड़कियाँ तुम पर हँसी थीं? कमल ने कहा था तुम चुपचाप किनारे पर खड़ी क्यों नहीं हँस रही थी। चन्दा ने कहा इसीलिए तो आज हँस रही हूँ। उस दिन हँसना अच्छा होता क्या ? इसके पश्तात् चन्दा ने जो कुछ अपने पिता के घर सुना था उसके आधार पर बता दिया कि कमल डॉक्टरी पढ़ रहा है और उसी वर्ष उसकी परीक्षा होने वाली थी।

इसके बाद दोनों मं कुछ समय तक अच्छा- खासा रोमांस चला था। एक दिन जब दोनों एक पहाड़ी पर घूमने गए थे तो एकाएक बारिश आ गई थी और वे दिनों एक- दूसरे को ढ़ांपे एक पेड़ के नीचे दुबक गए थे। बारिश थमी थी तो चन्दा ने कहा था, अब में तुमसे दूर नहीं रह पाऊंगी।... इस बारिश ने...। कहते- कहते वह रुक गई थी।

उसने भी कहा था, मैं भी नहीं रह पाऊँगा चन्दा! चन्दा ने कहा था कोलकाता जाकर सब कुछ भूल जाओगे। ज़िन्दगी में कभी याद भी नहीं आएगी कोई चन्दा थी। कमल ने कहा था ऐसी बात नहीं हो सकती। इसके बाद वे लौटे थे। तो नाले में पानी

भर आया था, दोनों ने कुछ देर तक प्रतीक्षा की थी उसके बाद कमल ने उसे गोद में उठाकर नाला पार करा दिया था।

इसके पश्चात् दोनों का प्रेम और परवान चढ़ा। कमल ने तय कर लिया था कि डॉक्टरी पास कर वह दार्जिलिंग लौट आएगा। और यहीं अपनी डिस्पेंसरी खोल लेगा।

लौटने का दिन आया तो चन्दा ने उसे रात के अंधेरे में विदा दी थी और उसने कहा था कि मुझे विश्वास है कि तुम लौटोगे ज़रूर, यह रात साक्षी है कि पास- पास होते हुए भी हम मिले नहीं हैं। मिलन की रात कब होगी। यह तुम ही तय करोगे।

और आज पच्चीस वर्षों बाद कमल बोस दार्जिलिंग लौटे थे। इतने दिनों में चन्दा तो कहीं मिली नहीं थी। आखिर एक दिन कमल बोस उस जगह पहूंच ही गए जहां दिलबहादुर थापा और चन्दा रहते थे। वहाँ उन दोनों का कोई आता- पाता नहीं था। उसजगह एक टाल था। वहां बैठे लोगों ने कहा यहाँ तो कभी कोई वैद्य थे ही नहीं। हम लोग तो हमेशा से यही टाल देखते आए हैं, तभी एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति मिला। उसने कहा बहुत दिन हुए थापा वैद्य थे लेकिन यह ज़माने पहले की बात है। इतना कह कर बूढ़ा चल दिया तो कमल उसके पीछे लग गए और उसी द्वारा उसे यह पता लगा कि वैद्य मर गए लेकिन उनकी लड़की ने उनकी इज्जत राख कर दी, उनका बुढ़ापा बिगाड़ दिया। कमल बोस ने पूछा- कैसे ? बूढ़े ने कहा - दार्जिलिंग में सैलानी तो आते ही रहते हैं। एक बार कोई नौजवान डॉक्टर आया था, उससे लड़की का कुछ

लग - लगाव हो गया था। वैद्य जी उसकी शादी करना चाहते थे लेकिन वह उस डॉक्टर की प्रतीक्षा करती रही। लोग उसको लेकर फब्तियों कसने लगे। उसे डॉक्टरनी कह कर फकाते।

आखिर एक लंगड़े हरकारे से उसकी शादी कर दी गई। वह उसकी उम्र से काफी बड़ा था। शादी के बाद ही वैद्य जी मर गए। तीन- चार साल बाद लड़की को एक बच्ची हुई। चन्दा का यह बूढ़ा पति जंगल में गश्त पर जाया करता था। एक दिन पता चला किसी जंगली जानवर ने उसे मार डाला। लोग उसकी लाश खोजने गए पर चन्दा उनके साथ नहीं गई। वह बहुत जिद्दी थी। सात - आठ महीने तक वह यहाँ रही। आमदनी का कोई रास्ता नहीं। काम की तलाश में वह नीली घाटी चली गई। कमल बोस ने पूछा था नीलीं घाटी कहां है। बूढ़े ने बताया, घूम स्टेशन से कलिंगपोंग को एक सड़क जाती है, उसी ओर बीस मील पूरब में है नीली घाटी।

कमल बोस ने काफी परिश्रम के बाद चन्दा का ठिकाना ढूंढ लिया था। पता लगा वह पगली के नाम से पुकारी जाती थी और एक बेटी छोड़ कर मर गई। बेटी का नाम था चांदनी। कमल बोस ने उसका भी पता कर लिया। वह वेश्या बन कर कोठे पर बैठ गई थी। बोस ने चांदनी को वहां से उबारने का बहुत प्रयास किया। अपने साथ लाकर रखे पर वह कोठे को छोड़कर उनके साथ लौटने को तैयार नहीं हुई। उन्होंने अन्ततः बता ही दिया कि वह उसकी मां चन्दा से विवाह का वादा कर चुका था। वह पूरी ज़िन्दगी उसकी प्रतीक्षा करती रही। चांदनी चन्दा की बेटी है अतः

उसकी भी बेटी के ही समान है। चांदनी को इस बात से थोड़ा- सा धक्का लगा किन्तु वह अपने कोठे को छोड़ने को तैयार नहीं हुई और कमल को उदास एकांकी कोलकाता लौटना पड़ा।

उपन्यास की कहानी मार्मिक और दर्द- भरी है। जीवन के यथार्थ को उद्‌घाटित करती है फिर भी कहीं- न- कहीं से एक फिल्म पटकथा की तरह ही लगती है।

3.3.5.1 मशीनीकरण

आधुनिक युग में मशीनीकरण की प्रवृत्ति ने जीवन को एक अभूतपूर्व गति दी है। आज व्यक्ति का जीवन तीव्र गति के नियन्त्रण में आबद्ध है। यह गतिमानता प्रतिदिन बढ़ती जाती है। यही आज समाज में व्यक्ति के स्थान और महत्व का मानक बनी हुई हैं। मशीनीकरण, औद्योगीकरण, अद्यतन उपकरण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क और ज़िन्दगी की तीव्र गति के अनेक संदर्भों से जुड़ा हुआ व्यक्ति ही समाज में विशिष्ट स्थान और सम्मान पा सकता है। अतः आज व्यक्ति इस रेस में दौड़ना चाहता है। लेकिन ये सारे साधन समाज में हर किसी को तो प्राप्त नहीं होते। एक विशिष्ट और सम्पन्न उच्चवर्ग ही इन सबको पा सकता है। आधुनिक जीवन व्यवस्था में इस स्थिति को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि जीवन के शेष मूल्यों का इसके सम्मुख अवमूल्यन हो चुका है। परिणामस्वरूप प्रतियोगिता की प्रवृत्ति व्यक्ति के भीतर बढ़ती जा रही हैं।

'आगामी अतीत' के कमल बोस का जीवन क्रूरतम सफलता और भयावह रिक्तता के दो बिन्दुओं में आबद्ध आधुनिक जीवन की यह एक बहुत बडी विड़म्बना है कि अभूतपूर्व सफलता के बावजूद व्यक्ति बिलकुल रिक्त रह जाता है। कमल बोस रिक्तता बोध से छटपटाते हुए ऐसे ही चरित्र है जो अपने अतीत को लौटा लेना चाहते हैं। उस अतीत जो जीवन का प्राप्य हो सकता था। उसे सार्थक बना सकता था। कमल बोस दवाइयों की उस दुनिया से दूर भागना चाहते हैं, जिसके पीछे वे खुद कभी होश खोकर दौडे थे। जो उन्हें जीवन को सार्थक और महत्वपूर्ण बनाने के लिए आवश्य लगी थी। अब वे दवाइयों से सम्बन्धित हर चीज़ यहाँ तक कि इश्तिहार के बोर्ड से भी दूर भागना चाहते हैं। कमलबोस कहते हैं "मैं जिस चीज़ से पीछा छुडाना चाहता हूँ, वही मेरे पीछे पड़ी है। ऐसा कमरा दे दीजिए, जहाँ से यह मानसी कैमिकल्स का विज्ञापन न दिखाई दे..... मैं ने आपको बताया था, अब बहुत ऊब गया हूँ इन दवाइयों की दुनिया से .... इससे बिलकुल दूर रहना चाहता हूँ ।"[27]

कमलबोस करी द्रेजेडी यही है कि इस प्रतिस्पर्धा में वे वस्तुओं को पाते गए और उसी क्रम में व्यक्तियों को खोते गए। वे दवाइयों की फैक्टरी के मालिक जरूर बन गए लेकिन चन्दा को उन्होंने खो दिया। उनके सामने सवाल चुनाव का था। उन्हें या तो चन्दा को, अपने पुराने वर्ग और परिवेश को चुनना था या स्पर्धामूलक जीवन को। कमलबोस ने व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रतियोगितापूर्ण जिन्दगी का चुनाव किया।

3.3.5.2. आधुनिकता

पूँजीवादी समाज को आधार बनाकर लिखा गया कमलेश्वर का उपन्यास 'आगामी अतीत'। आधुनिक युग में मनुष्य अपने सुख - भोग के लिए अपने वैयक्तिक संबंधों को भूलने के लिए तैयार हो जाते है। कमलेश्वर ने रोमांटिकता को रोमाटिकता से ही तोड़ने की कोशिश इस उपन्यास में की हैं।

अतीत कभी भी वापस नहीं आता। लेकिन प्रस्तुत उपन्यास का नायक 'कमलबोस' अपने पुराने दिनों को वापस लाना चाहते हैं। 'कमलबोस' का जन्म एक दरिद्र परिवार में ही हुआ था। लेकिन अपने ही बल पर वे मानसी केमिक्लस का मुख्य निर्देशक बन जाते हैं। लेकिन यह पद मिलने के लिए वे अपने अतीत को भूल जाते हैं।

आधुनिकता की खास विशेषता यह है कि जब आदमी इसके वश में आएगा तो नदी के समान इसके साथ - साथ बहेगा। केवल आगे के रास्ता ही उनकी आँखों के सामने आ जाता है। उपन्यास का नायक कमलबोस ऐसा ही नायक है जिन्होंने आधुनिकता के साथ - साथ बहते - बहते अपने कर्तव्यों को भुलाते रहते हैं और इसका फल भी भोगता हैं।

आधुनिकता आज के मानव के आगे प्रश्न चिह्न ही है। यहाँ लोगों को अनेक प्रतियोगिताओं का सामना करना पडा था। जिन्दगी की प्रतियोगिता की दौड में उसके

साथ - साथ दौडकर दुनिया भर को जीतकर अपने - आपसे हार मानना ही आधुनिक लोगों की नियति है।

जिन्दगी में सब कुछ हासिल करने की दौड़ में हमें कुछ - न - कुछ ज़रूर छोडना पड़ता है। कमलबोस अपने मित्र प्रशान्त को लिखते हैं, ''जिन्दगी में जो कुछ अपने आप हासिल नहीं किया जाता दोस्त वह बहुत काम नहीं आता।''[28]

जीवन के सारे सुख-वैभवों को भोगते समय कोई भी व्यक्ति अपने बारे में नहीं सोचता। आगे क्या हासिल करना है, यह चिन्ता हमेशा उसके मन को सताती रहती है। लेकिन जब उसे मालूम हो जाता है कि धन कभी भी मन को शांति नहीं देती तब वह अपने गत जीवन के बारे में सोचता है। वह अतीत को लौटाना चाहता है। तब उन्हें मालूम होता है कि समय की रफ्तार में कितनी तेज़ी होती है।

3.3.6 वही बात

वह उपन्यास स्त्री के खालीपन को लेकर है। अक्सर पति काम पर चला जाता है और पत्नी अकेली रह जाती है। वह कई दिनों तक भी बाहर रह सकता। ऐसे में पत्नी अपने एकाकीपन से ऊब कर उसे दूर करने का रास्ता किसी तीसरे व्यक्ति में खोज सकती है। एक सामाजिक यथार्थ को इस छोटे उपन्यास में कलात्मक तरीके से रूपायित किया गया है। उपन्यास में प्रमुख पात्र हैं प्रशान्त, समीरा और नकुल। प्रशान्त चीफ इंजीनियर है। नकुल उसी का डेपुटी । समीरा प्रशान्त के काम में उलझे रहने से

ऊब जाती है। इस संबंध में दोनों के बीच वार्तालाप का एक उदाहरण दिया जा रहा है... ''प्रशान्त घर आया तो सूटकेस तैयार था। साथ में समीरा का अपना सूटकेस भी। जीप बाहर खडी थी। - प्रशान्त के आते ही समीरा बोली'' मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। मेरा मन यहाँ नहीं लगता।

- पर समीरा, मैं सरकारी काम में जा रहा हूँ ।

- और मैं सरकारी कामों के लिए यहाँ अकेले रूकने को तैयार नहीं हूँ।

प्रशान्त को यह उम्मीद नहीं थी। वह सबीरा के इस बदले हुए रूप को नहीं समझ पाया। और फिर बन्बई में जितनी फुर्ती से उसे सब काम निबटाना था, उसमें समीरा के जाने से खलल पड़ता .....।

- मैं जाऊँगी प्रशान्त तुम्हारे साथ.....।

- ये सब मैं अपने लिए नहीं तुम्हारे लिए ही कर रहा हूँ। एक काम में मुझे अगर सफलता मिलती तो क्या वह सफलता तुम्हारे लिए भी नहीं है?

- मुझे सफलता की नहीं तुम्हारी ज़रूरत है।

- पर तुम जानती हो, समीरा, असफल आदमी की ज़रूरत किसी भी आदमी को नहीं होती।''[29]

प्रशान की, घर से अनुपरिस्थति बढ़ती ही गई। इसके अतिरिक्त वह घर से भी काम के संबंध में बाहर फोन करता रहा।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि समीरा नकुल के समीप आती गई। एक दिन समीरा ने प्रशान्त से कह ही दिया

- ''मैं हम अब तुम्हारी नहीं रह गई हूँ प्रशान्त।''[30]

प्रशान्त भौंचका रह गया। एक दिन प्रशान्त ने अंतिम निर्णय ले लिया। उसने अपना पोस्ट और समीरा दोनों को बंगले के साथ ही छोड दिया और समीरा से कहता गया कि वह तलाके के कागज़ों पर दस्तखत कर देगा। नकुल और समीरा साथ रहने लगे।

इधर नकुल और समीरा में भी खटपट होने लगी। नकुल को भी काम से बाहर जाना ही था। समीरा को फिर अकेलापन खटकने लगा। कई - कई दिनों तक उसे बाहर रहना पड़ता था। अन्ततः यह हुआ कि समीरा पुनः प्रशान्त के करीब आने लगी। लेकिन यह सामीप्य टिका नहीं। नकुल और समीरा ही साथ रह गए और प्रशान्त उनके जीवन से सदा के लिए बाहर हो गए। इस उपन्यास में महत्वाकांक्षी पुरुष के वैवाहिक जीवन में निश्चित ही उत्पन्न होनेवाले तनाव और अन्ततः उसके कुप्रभाव को रेखांकित करते हुए लेखक ने पत्नी का पक्ष लेते हुए उसे किसी अन्य में अपने सुख को तलाशने की छूट दी। लेकिन इससे समस्या का वास्तविक समाधान नहीं हो जाता।

3.3.6.1 नारी - क्रान्ति

इस उपन्यास में एक नए दृष्टिकोण से कहानी को उठाया गया है। उपन्यास के केन्द्र में महत्वाकांक्षी पति और उसकी पत्नी का द्वन्द्व है। वह पत्नी लगातार दमित महसूस करती है। पति के तबादले के बाद पत्नी का एकान्त निरन्तर गहरा होता जाता है। ऐसी अवस्था में भावनावश वह पत्नी अपने उस एकान्त को खत्म कर लेती है। वह एक साहसिक फैसला लेती है, और फिर तलाक हो जाता है। उसके बाद वह दोबारा विवाह करती है और पहला पति अपनी महत्वाकांक्षाओं की दुनिया में लौट जाता है। कथा की परिणति में जो दूसरा रास्ता पत्नी ने निकाला है, उसे एक नवीन नारी क्रान्ति की संज्ञा दी जा सकती है। यहाँ स्त्री की भावना को दमित न रखने का एक कोण भी सामने आता है। यदि वह उपेक्षित और अकेलापन महसूस करती है तो इसकी दोषी निश्चित तौर पर पुरुष की महत्वाकांक्षा ही है। ऐसी हालत में स्त्री को क्या अपना खालीपन भर लेने की आजादी नहीं होनी चाहिए? यहाँ लेखक नारी स्वातंत्र्य का पक्षधर तो इस उपन्यास में प्रतीत होता है।

3.3.7 अनबीता व्यतीत

भारतीय संस्कृति में मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के साथ ही प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध तथा सब अस्तित्व के महत्व को आरंभिक काल से ही पहचाना गया है। वैदिक मंत्रों में मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव के चित्रों के साथ ही सम्पूर्ण वनस्पति जगत में शान्ति की कामना व्यक्त हुई है। आधुनिक

युग में मनुष्य ने अपनी सुख - सुविधा केलिए प्रकृति का इस तरह दोहन शुरु किया कि जीव जन्तुओं का अस्तित्व ही खतरे में पड गया। अपने प्रवृत्ति विजय के अहंकार पूर्ण अभियान में मनुष्य ने अपने ही अस्तित्व केलिए खतरे उत्पन्न कर लिये।

उपन्यास की कथावस्तु का चयन तथा संयोजन बड़ी कुशलता से किया गया है। स्वतन्त्रता के बाद देशी रियासतों का विलय भारत संघ में कर दिया गया। रियासतों से जुड़ी अनेक ऐसी राष्ट्रीय महत्व की इमारतें, मन्दिर, विद्यालय तथा अन्य कलात्मक कृतियाँ रहीं, जिनकी देखभाल और सुरक्षा रियासतें अपने सीमित साधन से नहीं कर पा रही थी। सरकार चाहती है कि इन्हें पुरातत्व विभाग अपनी देखरेख में रखे, किन्तु निहित स्वार्थ के कारण राजाओं के उत्तराधिकारी उसका विरोध करने में संलग्न रहे। अरावली पर्वत माला की गोद में बसा सुमेरगढ़ राज्य है। इस राज्य का विलय भारत में हो गया है। इसलिए इस राज्य के विशाल दुर्ग में पहले जैसी शान तथा चहल- पहल नहीं है। दुर्ग में महारानी राजलक्ष्मी दीवानखाने की फर्श पर मृत पक्षियों के खून के छींटे तथा हिरणी की रक्तरंजित लाश देखकर अत्यन्त व्यथित दिखाई देती हैं। उपन्यास की केन्द्रीयसंवेदना आरम्भ में ही उभर जाती है। महारानी राजलक्ष्मी भगवान् से कहती हैं कि तूने इन मासूम पक्षियों को क्यों न इतनी शक्ति दी, जिससे ये अपने जीवन की रक्षा कर सकते। रानी राजलक्ष्मी की इस पीड़ा के प्रति सहानुभूति रखनेवाली उसकी नतिनी समीरा है। दोनों को पक्षियों से बेहद प्यार है। महारानी ने काकातुआ पाल रखा है। समीरा के आग्रह करने पर नानी ने एक कहानी सुनाई। एक

राजकुमारी थी। उसके जीवन पर अनिष्ट और महाकाल की छाया थी, उससे राज्य का भी अहित हो सकता था अतः उसे अलग महल में सोलह वर्ष बिताने की व्यवस्था कर दी गयी। एक राजकुमार ने उस सुन्दर राजकुमारी को अपने बाहुबल से प्राप्त कर लिया और उससे विवाह कर लिया। उस राजकुमारी की एक बुरी आदत थी, वह पक्षियों का मांस बहुत पसंद करती थी । धीरे - धीरे वह जीवित चिड़िया भी खाने लगी। राजकुमार परेशान होकर जिस तोते में राजकुमारी की जान बसती थी, उसे मारकर राजकुमारी को खत्म कर दिया। महाराज सुरेन्द्र सिंह को दुर्ग का सन्नाटा बहुत खलता था। अपने सिर के उतरे हुए ताज की भी उन्हें चिन्ता है। वे तन मन से थके हैं। इसके विपरीत समीरा झील में आए पक्षियों के कलरव में मस्त है। नानी माँ ने विदेशी बहेलिए से अफ्रिकी काकातुआ खरीदा था। इनसे उनको बेहद प्यार था। एक दिन तेज अंधड़ आया काकातुए भयभीत होकर इधर - उधर उड़ने लगे। अन्य पक्षी भी दीवानखाने में घुस आए थे। काकातुए झूमर की लड़ से उलझ गए, वह टूटकर फर्श पर गिरकर चूर- चूर हो गया। महाराज ने गुस्से में आकर बन्दूक से उनकी हत्या कर दी। इन पक्षियों के वियोग से व्यथित महारानी जल्दी ही स्वर्ग सिधार गयीं। समीरा अब अकेली हो गयी थी। एक दिन पुरातत्व विभाग का गौतम नामक एक नौजवान सुमेरगढ़ राज्य में पुरातात्विक महत्व की चीज़ों का व्यौरा बनाने केलिए दाखिल हुआ। उसका पहला परिचय मास्टर दीनानाथ की बेटी दिव्या से हुआ। दिव्या गौतम से प्रायः रोज ही मिलने- जुलने लगी। दिव्या के माध्यम से झील के किनारे गौतम से समीरा

की मुलाकात हुई। समीरा के व्यक्तित्व से गौतम अधिक आकर्षित हुआ। गौतम धीरे-धीरे दिव्या की उपेक्षा करने लगा। फलस्वरूप एक दिन दिव्या अपने कपड़े तथा चप्पल झील के तट पर छोड़कर आत्महत्या का भ्रम पैदा करके गायब हो गयी। गौतम और समीरा दोनों ही प्रकृति प्रेमी हैं तथा दोनों के मिज़ाज में समरूपता है। दोनों एक-दूसरे से सच्चे मन से प्यार करने लगे। समीरा की माता विजय लक्ष्मी और पिता नरेन्द्र सिंह सुमैरगढ़ आ गए। विभिन्न मुकदमों की पैरवी के लिए इनकी यहाँ आवश्यकता थी। पिता नरेन्द्र के कमरे में समीरा ने पक्षियों के आर्तनाद को सुना और समझ गयी कि उसके पिता पक्षियों के साथ कितना बेरहमी का व्यवहार करते हैं। उसने पिंजड़े में बन्द बहुत से पक्षियों को आजाद कर दिया। इस पर नरेन्द्र सिंह उस पर बहुत क्रोधित हुए। समीरा ने पक्षियों के निर्यात का विरोध किया और अपने पिता को बहुत फटकारा। दोनों में मतभेद बढ़ता ही गया। अन्ततः समीरा का विवाह करके राजमहल से बाहर करने का फैसला लिया गया। समीरा के गौतम से मिलने - जुलने पर पाबंदी लगा दी गयी। रतनपुर के राजकुमार जयसिंह के साथ समीरा का विवाह कर दिया गया। चूँकि जयसिंह ने आरम्भ में पुक्षियों के विषय में जो जानकारी दी, उससे समीरा को यही लगा कि राजकुमार को पक्षियों से बड़ा प्रेम है लेकिन रतनपुर जाने पर उसे क्रमशः ज्ञात हुआ कि उसका पति भी पिता की तरह ही पक्षियों की हत्या कर उसमें भूसे भरकर निर्यात करता है। समीरा पति का विरोध करती है, लेकिन वह अपने कारोबार को छोडने से मना कर देता है। समीरा अपने बेटे विक्रम को लेकर

सुमेरगढ़ चली आयी। एक दिन उसका पति उसे मनाने केलिए आया। दोनों में काफी बहस हुई किन्तु कोई समझौता नहीं हो सका। समीरा को जब भी अवसर मिलता है, वह अपनी जान जोखिम में डालकर पक्षियों की रक्षा करती है।

गौतम अपनी रिपोर्ड तैयार करने में लगा है तथा महाराज एवं उनके दीवान का प्रयत्न है कि वह ऐसी रिपोर्ट तैयार करे, जिससे रियासत की आमदनी पर कोई असर न आए। उसको रिश्वत की लालच दी जाती है और धमकी भी दी जाती है, लेकिन वह अपने कार्य के प्रति निष्ठावान बना रहता है। रिपोर्ट को गायब कराने तथा नष्ट कराने के भी प्रयत्न होते हैं, लेकिन गौतम बड़ी चतुराई से उसे दिल्ली पहुँचा देता है।

रतनपुर में रहते हुए समीरा के एक बेटा हुआ, जिसके जन्मोत्सव के समय दिव्या दीपशिखा के सामने भजन गाने आई थी। परन्तु समीरा से आमने सामने उसकी बात नहीं हो सकी। दिव्या के पिता मास्टर दीनानाथ ने बाद में दिव्या का पता लगा लिया।

कुँवर जयसिंह तथा समीरा के बीच दरार बढ़ती गयी। जयसिंह किसी भी रूप में झुकना नहीं चाहता। समीरा और जयसिंह के बीच दूरियाँ बढ़ने के पीछे गौतम को माना जा रहा है। परन्तु वास्तविकता यह है, कि गौतम और समीरा के बीच का प्रेम सम्बन्ध दैहिक या वासनात्मक नहीं है उसमें भाव साम्य के कारण एक सहज लगाव ही है। एक रात सुरेन्द्र सिंह, नरेन्द्र सिंह, जयसिंह आदि ने गौतम की हत्या कराने की साजिश रची, जिसे समीरा सुन गयी। वह सुबह ही उसे आगाह करने जा रही थी, तभी

उसके पति ने उसे गोली मार दी, वह डगमगाकर झील में गिर गयी और उसकी मृत्यु हो गयी।

गौतम ने अनेक कठिनाइयों के बावजूद जो रिपोर्ट भेजी, उसकी इसके लिए बड़ी तारीफ की गयी। उसे दूसरा महत्वपूर्ण कार्य आदिवासी बाध गुफाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने का सौंपा गया। इस बीच गौतम की माँ का देहान्त हो गया। माँ की इच्छा थी कि एक धर्मशाला बनवाए। उसकी पूर्ति करते हुए गौतम ने माँ द्वारा जुटाए गए रुपये से झील को खरीद लिया, वहाँ पक्षियों की धर्मशाला बना दी।

उपन्यास के कथानक की बनावट में पक्षियों की जातियों के वर्णन के साथ ही प्रकृति के विविध मनोहर चित्रों को समाहित किया गया है। सम्पूर्ण कथानक केन्द्रीय समस्या के इर्द- गिर्द घूमता है। पक्षियों से प्रेम करनेवाले पात्रों तथा उनके जीवन प्रसंगों एवं पक्षियों की हत्या करनेवाले पात्रों के घात- प्रतिघात से ही कथानक गतिशील होता है। कथानक में जिज्ञासा एवं रोचकता निरन्तर बनी रहती है। कथानक में पक्षियों सम्बन्धी ज्ञान, प्रकृति चित्रण तथा पुरातात्विक महत्व के स्थानों के भी रोचक वर्णन को समाहित किया गया है।

3.3.7.1 पर्यावरण रक्षण

प्रस्तुत उपन्यास पर्यावरण रक्षण के प्रयोजन से रचा गया हिन्दी का विरला उन्पन्यास है। ज्यादातर उपन्यास स्त्री - पुरुष के प्रेम सम्बन्धों, कुंठा, संत्रास तथा संघर्ष

को लेकर लिख गए हैं, और लिखे जा रहै हैं। इस उपन्यास में मनुष्य और पक्षियों की प्रेम संवेदना को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। मनुष्य की श्रेष्ठता इसी कारण है कि उसका हृदय बड़ा विशाल है, उसमें केवल मानव के प्रति ही नहीं, बल्कि समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम भाव रहता है। अनबीता व्यतीत के समीरा, दिव्या, महारानी राजलक्ष्मी, गौतम आदि पात्रों के मन में प्रकृति और जीव- जन्तुओं के प्रति गहन प्रेम है।

मनुष्य धर्म, कर्म तथा सम्प्रदाय के नाम पर अनेक ढोंग करता है, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए ईश्वर की बनायी मोहक प्रकृति को नष्ट करता है। ईश्वर की मूल्यवान, खूबसूरत धरोहर निर्दयी हाथों से बच जाय, इसी चिन्ता को प्रतिफलित करता है प्रस्तुत उपन्यास। महारानी राजलक्ष्मी की यह उक्ति... उपन्यास की केन्द्रीय समस्या को उभारती है-

''हे भगवान! जब तूने इन जीव- जन्तुओं को जीवन दिया है तो इन्हें इतनी शक्ति भी देता कि ये बेचारे अपने जीवन की रक्षा कर पाते। तेरी दी धरोहर को उन निर्दयी हाथों से बचा पाते जो तूने इन्हें दी थी। विचित्र है तेरी माया- जीवन मृत्यु का यह दुःखदायी संयोग काश इन्सान इसे समझ पाता....।''[31]

पक्षियों के सामूहिक कलरव में अर्किस्ट्रा का संगीत फूटता है जो लोग इसे सुनकर आनंदित होते हैं वे सौभाग्यशाली है। जो पशु पक्षियों को मारकर धन कमाने

में संलग्न हैं, उनके विरुद्ध जनमानस को उत्तेजित करने का काम इस उपन्यास के द्वारा सम्पन्न होता है। इस उपन्यास के पात्र अपने सुख- दुःख के लिए संघर्ष नहीं करते, बल्कि पक्षियों की मुक्ति तथा उनके प्राकृतिक अधिकार के लिए संघर्ष करते हैं। समय रहते वह यदि पर्यावरण के प्रति सचेष्ट नहीं होगा तो उसका जीना दूभर हो जाएगा। विदेशियों की नकल पर भारत में पर्यटन उद्योग को विकसित करना उचित नहीं है। भारतीय उद्योग में प्रकृति एवं पशु पक्षियों के प्रति संवेदना तथा अहिंसा का भाव होना आवश्यक है।

3.3.7.2. राजशाही और लोकतांत्रिक मूल्यों की टकराहट

'अनबीता व्यतीत' में स्वतन्त्रता के ठीक बाद राजशाही और लोकतांत्रिक मूल्यों की टकराहट का भी चित्रण हुआ है। लेखक ने उन हथकडों तथा करामतों को भी चित्रित किया है, जो लोकतंत्र को कमजोर करती हैं। अधिकारियों के कामकाज में अनुचित हस्ताक्षेप, रिश्वत की लालच, अपना कार्य सिद्ध न होता देख हत्या, आगजनी का तांडव नृत्य आदि सामंती शक्तियों के इशारे पर घटित हुआ। आरम्भ में जिन अराजक तत्वों के सहारे इन कुकर्मों को अंजाम दिया गया, धीरे- धीरे वही शक्तियाँ सामंती तत्वों पर भी हावी होती गयी। पर्यावरण तथा सांस्कृतिक प्रदूषणों में इन्हीं तत्वों की विशेष भूमिका रही है। अहिंसा मूल्य को प्रतिपादित करते हुए लेखक ने उपर्युक्त सामाजिक यथार्थ को भी बड़ी कुशलता से अंकित किया है।

समीरा अपने परिवार की दुश्मन इसलिए बन गयी कि वह पक्षियों के रक्षण एवं प्राकृतिक अधिकार की लड़ाई लड़ती है। उसकी हत्या इसलिए कर दी जाती है कि वह एक नेक सरकारी अधिकारी को अपने प्राण बचाने के लिए आगाह करने जा रही है। खुले आम समीरा की हत्या करनेवाला उसका पिता कानून की निगागों से इसलिए बच जाता है कि वह बडे एप्रोच का आदमी है। राजनीतिक एवं समाजिक व्यवस्था में चूँकि ऐसे ही एप्रोच वाले लोगों का वर्चस्व स्थापित होता गया। इसलिए समाजिक न्याय की आशा क्षीण होती चली गयी।

3.4 राजनीतिक उपन्यास

3.4.1 लौटे हुए मुसाफिर

प्रस्तुत उपन्यास देश के विभाजन से उत्पन्न साम्प्रदायिक ढंगों पर आधारित है। इसका उद्देश्य यह घोषित करना है कि बंटवारे के बाद कुछ मुसलमान किस तरह भ्रम का आखेट हो पाकिस्तान की राह अपनाते हैं और उनमें से अधिकांश किस तरह जब उसका भ्रम टूटता है तो वे न सही किन्तु उनके बेटे अपने घरों को तलाशते हुए वापस लौटते हैं।

नसीबन, सत्तार, सलमा, साई बच्चन, मौलाना नसीरुद्दीन आदि इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं जिनके माध्यम से लोगों की पीड़ा और आकांक्षाओं को भी अभिव्यक्त किया गया है।

उस समय की जो स्थिति थी और हिन्दुओं मुसलमानों के रिश्तों के बीच जो दरार पड गई थी उसको उपन्यास के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट किया जा सकता हैः

‘‘मैं काहे को कुछ चाहूँगा... पर नसीबन, यही समझने मैं आया था कि वक्त बहुत बुरा आ गया है... पूरे मुल्क में हिन्दू कौम मुसलमानों के खून की प्यासी हो रही है और तू है कि बच्चन के लौडों की घर पर उठा लाई... उसके पीछे पुलीस पड़ी है, तू है कि अपनी नादानियों से बाज़ नहीं आती... हमने तो यहाँ तक सुना है कि डाकबंगले में चोरी करके बच्चन नदी पार के ठाकुरों के यहाँ छिप गया है और वहां जो फौजें, मुसलमानों के कत्लेआम के लिए बन रही हैं, उनका सरगना बन गया है।’’[32] लेखक का यह मानना है कि धार्मिक उन्माद से कहीं अधिक अधकचरा इतिहास इसमें खलनायक की भूमिका निभाता है। ‘धार्मिक उन्माद को तो मानसिक हिंसा का औज़ार बनाया जाता है।’

इस कस्बे के मुसलमान किस तरह अपने घरबार छोडकर गए और फिर किस तरह लौट आए। उसकी कहानी नीचे की पंक्तियां कहती हैं -

‘‘सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।

गरीबी, अपमान, भूख और बेबसी में भी वे हारे नहीं, पर नफरत की आग और शंकापूर्ण भय का धुआँ वे बदशि नहीं कर पाए और उनके काफिले एक अनजाने देश की ओर चले गए।''

और तब से इतने वर्ष गुज़र गए-यहाँ कोई नही आया सिवा इफ्तिखार के।

तब उसे नसीबन मिली थी। तुम नहीं गई? इफ्तिकार ने पूछा था। 'कहाँ जाती.... मैं समझती थी कि तुम पाकिस्तान चले गए ... अब कहाँ हो?' 'मैं तो सत्तार की मौत से घबराकर भाग गया था, आजकल हाथरास में हूँ।'[33]

उपन्यास का अन्त नसीबन की खुशी से होता है। उसके लडके बसीर, बाकर, रमज़ानी आदि जवान होकर लौटे थे। नसीबन ने उन्हें उन निशानों को दिखाया था जो अब भी बाकी थे। वह बोल पड़ी थी। ''यहीं तेरे अब्बा का घर था ... बसीर यहीं बैठकर चमडा कमाया करता था और बाकर बेटे ... वह देख रहा है न उसी के नीचे जो टूटी हुई दीवार है, वह तेरा घर था ... और ढहा वह चबूतरा रमज़ानी के चाचा का है।

नसीबन बुआ । अब तो रात गुज़ारनी है। कल से अपने घरों को ठीक करेंगे।''[34] फत्ते ने उँगलियाँ चटकाते हुए कहा था। और सुबह तक के लिए रात उसी पेड़ के नीचे कट गई थी।

उपन्यास की अंतिम पंक्ति आदमी चाहे हिन्दू हो या मुसलमान उसके अपनी मिट्टी के प्रति प्रेम को गहराई से रेखांकित करती है।

3.4.1.1 विभाजन के परिणाम

विभाजन को लेकर लिखा गया 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास वास्तव में मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। देश - विभाजन की घटना के माध्यम से लेखक ने मानवीय मूल्यों को स्थापित किया है। विभाजन एक ऐसी राजनीतिक घटना सिद्ध हुई जिसके कारण भीषण परिणाम जनता को सहने पड़े क्योंकि हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही जातियों की राजनेताओं ने झूठे स्वप्न दिखाये। अपने - अपने देश में स्वर्गिक सुख - प्राप्ति के सब्जबाग दिखाए गए, लेकिन विभाजन के परिणाम जिस रूप में सामने आए उन्होंने इस सारी बातों को झूठा सिद्ध कर दिया। विभाजन तात्कालिक और बाहरी रूप में परिणाम हिंसा, मारकाट और भीषण हत्याकाण्ड में हुआ। लेकिन व्यक्ति मन के आन्तरिक स्तर पर यह परिणाम नफरत, सन्देह और अविश्वास के रूप में सामने आया। बाहरी रूप में ही सब कुछ नष्ट नहीं हूआ। बल्कि व्यक्ति - व्यक्ति के बीच की आत्मीयता अपनत्व और प्रेम भी नष्ट हो गया। 'लौटे हुए मुसाफिर' इसी बिन्दु को उद्घाटित करता है।

3.4.2 काली आंधी

यह कमलेश्वर के महत्वपूर्ण उपन्यासों में एक है। इसकी महत्ता इसीलए भी रेखांकनीय है कि इसके आधार पर एक फिल्म भी बनी जो पर्याप्त लोकप्रिय हूई। राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता को इस उपन्यास में विशेषरूप से

उजागर किया गया। इस उपन्यास के लेखक का उद्देश्य ही राजनीति के घृणित चेहरे को पाठकों के सामने लाना। राजनीति के क्षेत्र में महत्वाकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है साथ की अवसरवादिता का भी। यह जानी - सुनी बात है कि वोट माँगने के समय तो गरीबी मिटाने के बड़े - बड़े वादे किए जाते हैं। जनता को सब्ज़बाग दिखाया जाता है किन्तु चुनाव जीतते ही नेता अपने सारे बादे भूल जाते हैं।

इस उपन्यास में मालती कथानयिका है और चुनाव के मैदान में उतरी है। लेकिन चुनाव जीतने के बाद वे दिल्ली आ गई तो उसका भी रूपांतर वैसा ही हो गया जैसा अन्य नेताओं का होता है। अपने सारे वादे वह भी भूल गई। चुनाव तो जीत गई थीं।

3.4.2.1 राजनीति और व्यक्तिसत्ता

'काली आँधी' का कथ्य - राजनीतिक संस्था के मंच पर व्यक्ति को सत्ता आकांक्षा का नाट्य है। प्रस्तुत उपन्यास की मालती सत्ता - आकांक्षा की शिकार व्यक्ति है, जो अपनी व्यक्तिसत्ता को स्थापित करने में अपनी सारी शक्ति लगा देती है। मालती की सत्ता - आकांक्षा उस राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित है जहाँ सफलता केलिए सिर्फ जनता के स्वप्नों को ही नहीं अपने व्यक्तिगत संसार को भी दांव पर लगा देना जरूरी होता है। पहली बार की सफलता मालती के भीतर व्यक्तिगतसत्ता को स्थापित करने की दुर्निवार महत्वाकांक्षा को जन्म देती है। मालती किसी भी कीमत पर सफलता की

सीढियाँ चढ़ते जाना चाहती है। मालती के लिए राजनीति जनसेवा के बहाने व्यक्तिसत्ता को स्थापित करने का माध्यम है। दूसरी त्रासदी यह है कि इन व्यक्तियों की सत्ता - पिपासा इनके साथ जुड़े व्यक्तियों की जिन्दगी को भी प्रभावित करती है।

मालती की सत्ता - प्राप्ति और सफलता न केवल उसे ही घर से दूर ले जाती है बल्कि उसके पति जग्गीबाबू और बेटी लीली की जिन्दगी को भी लहूलुहान कर जाती है। मालती जैसे - जैसे सफलता की सीढियाँ चढ़ती गयी, उसका व्यक्तिगत जीवन के प्रति लगाव कम होने लगा। ऐसी बात नहीं थी कि पति के प्रति उसके मन में प्रेम नहीं था, लेकिन वह चाहती थी कि उसकी सुविधा के अनुसार जग्गीबाबू खुद को ढाल लें। लेकिन वे इस बात को मजूर नहीं कर पाये।

जग्गीबाबू और लीली की मालती सारे देश की मालतीदेवी हो गयी थी। यह उपन्यास स्वाधीनता के पश्चात् देश में व्याप्त राजनीति के आंतरिक पहलुओं को निर्ममता से उद्घाटित करता है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथ्य किसी सीमित युग से सम्बधित न होकर सार्वकालिक बन जाता है। मानवीय संस्कृति के इतिहास में फासिस्ट वृत्तियों का परिचय जगह - जगह मिलता है। लेकिन इधर दूसरे महायुद्ध के बाद एक नये तरह का पूंजीवाद विकसित हुआ है, जिसके तहत पूंजीवाद वर्ग उदार मतवाद का प्रश्रय लेकर सर्वहारा वर्ग का शोषण कर रहा है। इसीलिए बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एक नये तरह के फेसिजन का आरम्भ करता है और फिर हर देश में इस प्रवृत्ति के अलग - अलग

संस्करण दिखायी देते हैं। चाहे आप किसी भी शासन प्रणाली को अपनाइये। ये प्रवृत्ति अलग - अलग कवच ओढ़ कर अपने सत्ता - स्थानों को सुरक्षित रखने में लगी है। मतलब यह कि 'काली आँधी' की कथावस्तु प्रासंगिक समकालिक युगीन और सार्वकालिक एक साथ लगती हैष इस उपन्यास पर आधारित फिल्म 'आँधी' काफी सशक्त बन पडी है। फिल्म की सफलता का रहस्य भी कथ्य की सामयिकता में जितना है उससे कहीं अधिक उसकी सार्व कालिकता में ।

3.4.3 रेगिस्तान

'रंगिस्तान' मात्र 38 पृष्ठों की उपन्यासिका है। इस में स्वतंत्रता-पश्चात् के उन लोगों के टूटते सपनों की कहानी है, जिन्होंने आज़ादी के साथ अपने बहुत सारे ख्वाब जोड़ रखे थे। इनके सपने शीशे की तरह चूर - चूर हो गए।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गाँधीजी के आदेशानुसार हिन्दी प्रचार के लिए जिन्होंने अपना घरबार एवं सर्वस्व बलिदान किया उन्हें आज़ादी मिलने पर जो मान - सम्मान दिया गया इसके पर्दाफाश का प्रयास कमलेश्वर ने 'रेगिस्तान' उपन्यास में किया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने हिन्दी प्रचारक विश्वनाथ के ज़रिए इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है।

उपन्यास का सत्य एक कड़वा यथार्थ है। स्वतंत्रता निश्चित ही कुछेक लोगों के लिए वरदान है तो अधिकांश के लिए अर्थहीन और बहुत सीमा तक अभिशाप बन

कर आई। आज जब हमारे मूल्य निरंतर क्षरित होते जा रहे हैं, तथा भ्रष्टाचार का सर्वत्र नंगा नाच हो रहा है।

3.4.3.1 गाँधीवाद का पतन

'रेगिस्तान' का 'विश्वनाथ' ने आज़ादी मिलने के बाद अपने गाँव में हिन्दी भाषा की दुःस्थिति को देखकर फिर हिन्दी मन्दिर बनाया। इसकेलिए उसे अनेक कठिनाइयों को झेलना पडा। लेकिन खेद की बाद यह है कि हिन्दी मन्दिर में रखने केलिए उसे गाँधीजी की तस्वीर बहुत ढूँढने के बाद ही मिला। दूकानदार का कथन है ''ऐसी तस्वीरें तो देवी के मेले के बखत मिलेंगी। कौन खरीदता है अब। इधर तो ये सिनेमावाली ही चलती है।''[35] विश्वनाथ विवाह नहीं करता तथा घरवालों ने उसके बारे में सोचा भी नहीं क्योंकि वह सोचता है ''मेरा क्या ठिकाना! आज यहाँ, कल वहाँ... कोई काम धाम तो है नहीं। ... हम तो गाँधीजी के वालिंटियर है... शहर - शहर, गाँव- गाँव भटकते हैं- हिन्दी पढाते हैं।[36] स्वतन्त्र भारत में ऐसे गाँधीवादी आदर्श परायण युवकों को हास्य - व्यंग्य की वस्तु बना दिया गया है। हिन्दी मन्दिर केलिए ज़मीन की माँग में जब वे एमेले से मिलने गये तब उन्होंने विश्वनाथ का उपहास किया। तन- मन से हारकर विश्वनाथ आत्महत्या करने को सोचता है लेकिन ऐसा करके अपने लक्ष्य से मुँह तोडने को वह तैयार नहीं होता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश का नक्शा बदल गया। परतंत्र भारत में गाँधी देश के आदर्श रहे और करोडों उनके अनुयायी बने। लेकिन आज़ादी के बाद ऐसे जनसेवक नेताओं की संख्या कम होती गयी। स्वतंत्रता के बाद जिन्होंने शासन की बागडोर संभाला उन्होंने वायदे तो किये पर स्वतंत्रता का सही अर्थ जनता को नहीं दे पाये। 'लोकतंत्र' का सपना केवल सपना मात्र रह गया। राजनीतिक मूल्यों का तेज़ी से विघटन हुआ और बुजुर्ग पीढी अपने आश्वासनों को पूरा करने में असमर्थ रही। देश की आज़ादी की लडाई में जिस चरित्र बल और भावावेश का संगम हुआ था , गाँधी के रूप में जो दृष्टि मिली थी वह धीरे- धीरे ओझल होती गयी है। गाँधीवादी आदर्शों के पतन की अभिव्यक्ति कमलेश्वर के प्रस्तुत उपन्यास में हुई है। स्वतंत्रता के पहले नवयुवक व्यक्तिगत सुखों- दुःखों की चिन्ता न करके राष्ट्र केलिए अपना जान समर्पित करते थे। वे खादी, स्वदेशी, नशाबन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचारक बनकर देश के कोने- कोने में घूमते थे। अपना सारा जीवन गाँधीजी के आदर्शों के पीछे चलनेवाले स्वतंत्र भारत में आजनबी बनकर रह गये। कमलेश्वर ने भ्रष्ट अवसरवादी राजनीति पर व्यंग्य किया है।

राजनीति शोषण और राजनीति के अपराधीकरण से आम जनता त्रस्त है, आज़ादी अपना अर्थ खो चुकी है। महात्मा गाँधी के आह्वान पर लाखों लोगों ने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया था, पर गाँधी के गत होते ही गांधीवाद की भी धज्जिया उड़ गईं।

3.4.4 सुबह ..... दोपहर..... शाम .....

यह उपन्यास संवतंत्रता-पूर्व के भारतीय समाज की स्थिति पर प्रकाश डालता है। यह शहरी मध्यवर्गीय परिवार की कहामी है। भूमिका में लेखक का मानना है कि यह तो आवरण मात्र है। उसके अनुसार स्वतंत्रता-आन्दोलन का गहरा असर दादी जैसे पात्र में देखा जा सकता है।

उपन्यास के अध्ययन से पता चलता है कि लेखक यह रेखांकित करने का प्रयास करता है कि स्वतंत्रता - आन्दोलन में केवल शहर के लोगों ने ही नहीं बल्कि गाँव, देहात के गरीब लोगों ने भी पूर्ण योगदान दिया था। लेखक के अनुसार इसमें जो कुछ लिखा गया है वह अनुभूतियों की सच्चाई है। उपन्यास में एक ही परिवार में सिद्धांतों और आदर्शों के स्तर पर विभिन्नता पाई जाती है। उपन्यास यद्यपि बीते ज़माने की कहानी कहता है किन्तु उसकी कहानी आज भी प्रासंगिक है।

उपन्यास के पात्र हैं बडी दादी, जश्वंत, सन्तो, शान्ता, प्रवीन, तहसीलदार, इंस्पेक्टर आदि। उपन्यास में गाँव की ज़िन्दगी को बड़ी अच्छी तरह रूपायित किया गया है।

उपन्यास में क्रांतिकारियों के कारनामें भी अच्छी तरह दिए गए हैं। एक रेलगाडी पर क्रांतिकारियों ने हमला किया, एक ज़ोर का धमाका हुआ और गाडी ऐसी हिली कि जैसे भूकम्प आ गए थे। चीख पुकार मच गई थी। फिर गोलियों की

तड़तड़ाहट सुनाई पड़ी थी। वन्दे मातरम् के नारे लगे। मतलब यह कि क्रांतिकारियों ने सरकारी खज़ाना लूट लिया था। उपन्यास के अंत में यह भी दिखाया गया है कि हिन्दुस्तानी सिपाहियों का मन भी थोड़ी देर केलिए पिघल गया था। उपन्यास के अन्त का यह उद्धरण इस तथ्य को स्पष्ट करेगाः

''हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आँखें एक दूसरे से मिली थीं - उनके जन्मों के संस्कार, जागे थे और वे बन्दूकें फेंककर खडे हो गए थे, सिर झुकाए।

इंस्पेक्टर चीखा था -

- तोडो दरवाज़ा।

- हम नहीं तोडेंगे। एक हवलदार ने चीखकर कहा था। और सब पलट पड़े थे। इन्स्पैक्टर ने पिस्तौल निकालकर अपने सिपाहियों के सामने तान दी थी।

उसी समय गोली चलने की एक गूँजती आवाज़ आई थी -

नवीन की पिस्तौल से गोली चली थी और अंग्रेज़ इंस्पैक्टर की लाश वहीं छत पर गिर पड़ी थी।''[37]

स्वतंत्रता-पूर्व के संघर्ष चाहे वे शांतिपूर्ण हों या क्रांतिकारी, उनपर बडी-बडी पुस्तकें लिखी गई हैं। फिर भी कमलेश्वर के इस उपन्यास का महत्व है क्योंकि छोटे कलेवर में भी वह उपन्यास उन स्वतंत्र - सेनानियों की गाथा बडी गहराई से कहा जाता है जिनकी ओर देखने की आवश्यकता बहुत सारे लोगों ने नहीं की।

3.4.4.1 अंग्रेज़ों के अत्याचारों का चित्रण

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर आधारित कमलेश्वर का प्रमुख उपन्यास है 'सुबह दोपहर शाम'। इसमें देश केलिए शहीद हुए बड़े दादा के अरनामों की पूर्ति करनेवाली पपौत्री शान्ता या सन्तो के उज्वल चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

इसमें स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेज़ों के विरुद्ध हुए क्रांतिकारी आन्दोलन का उल्लेख हुआ है। अंग्रेज़ी शासन से मुक्ति पाने केलिए एक ओर देश में स्वतंत्रता संग्राम हो रहा था तो दूसरी ओर क्रांतिकारी आंदोलन भी। वे अंग्रेज़ों को तहस-नहस कर देना चाहते हैं। अंग्रेजों की नीति के विरुद्ध वे खुलकर जवाब देते थे। इस उपन्यास के संतों का देवर नवीन क्रांतिकारी है। उसने देश की आज़ादी के लिए क्रांति का मार्ग अपनाया। इसलिए अंग्रेज़ी पुलीस को उसकी तलाश है। वे नवीन को ज़िन्दा माँगता है। इस कारण से वे सदा घरवालों को सताते थे। फिर भी नवीन के पिता उसका समर्थक है। उन्होंने नवीन के भाई प्रवीन से कहा ''क्रांतिकारियों को आतंकवादी कहना गलत है... वे भी देश की उसी आज़ादी केलिए लड़ रहे हैं, जिसके लिए हमने प्रतिज्ञा ली है..... अन्तर सिद्धान्तों का है।''[38] एक बार क्रांतिकारियों ने रेलगाडी से सरकारी खजाना लूट लिया। उस में नवीन भी शामिल था। इस घटना के संबंध में एक हवलदार का कथन है ''नहीं! ऐसा नहीं होगा... वो लुडेरे नहीं थे....वो इनकलाबी थे! वो हमें नहीं..... सरकारे बर्त्तानिया का खजाना लूँटने आये थे।''[39] इस प्रकार जान

की परवाह किए बिना देश की मान की रक्षा में रत क्रांतिकारी नवीन का अत्यंत यथार्थ अंकन हुआ है।

3.4.4.2 नारी गरिमा

'सुबह ..... दोपहर.....शाम' पारिवारिकता और क्रांन्तिकारिता का एक संगम है। एक ही परिवार में सिद्धांतों और आदर्शों की विभिन्नता का यह यथार्थवादी रूपक है। यहाँ की संतो को एक वीरांगनना के रूप में उपन्यासकार ने दर्शाया है जो अपने देश एवं ससुराल की मान - सम्मान तथा देवर की जान की रक्षा के लिए अंग्रेज़ों से और अपने पति से भी लड़ती है। वह अत्यंत कुशल एवं व्यक्तित्व के धनी है। जब संतो (शांता) के पति ने अंग्रेज़ों से क्रांतिकारी भाई नवीन का पता बना दिया उस पर क्रूद्ध होकर संतो खुल्लम - खुल्ला कह देते है- ''देखो... तुम मेरे सुहाग ज़रूर हो...लेकिन देश के लिए कलंक हो ।''[40] अंग्रेज़ इन्स्पेक्टर संतो के देवर को पकडने घर आ गया तो वह उस पर बिफर उठती है तथा हिन्दुस्तानी सिपाहियों से चीखती है- ''शरम करो... तुम तो हिन्तुस्तानी हो! तुम्हारी आँखों में तो अपनी बहनों - माओं के लिए कुछ इज्जत होगी..., तुम हिन्दुस्तानी होकर फिरंगी की चाल चलने लगे।''[41] असल में दूसरी लक्ष्मीबाई बनकर उसने अपने देवर की ससुराल की तथा देश की जान एवं मान बचायी। अर्थात आज की नारी अबला नहीं सबला है।

3.5 ऐतिहासिक उपन्यास

3.5.1 कितने पाकिस्तान

फासीवाद आज विश्व के हरेक देश में आतंक फैला रहा है। वह मानव और संस्कृति की अस्मिता पर खतरा बन पड़ा है। फासीवाद समाज से एकता, समानता, स्वतंत्रता, भाईचार, आदि भावनाओं को मिटाना चाहता है। वह व्यक्ति की चेतना और बुद्धि को खत्म करके उसे अपना गुलाम बना देता है। वह झूठी और मनगढत बातें करता है और लोगों को उस पर भरोसा करने केलिए मज़बूर बना देता है।

यहाँ लेखक उपन्यास के आरंभ में ही वर्तमान समाज की विसंगतियों की ओर तीखा व्यंग्य बाण किया गया है-

"इन बंद कमरों में मेरी साँस घुटी जाती है

खिडकियाँ खोलता हूँ तो ज़हरीली हवा आती है।"[42]

इन शब्दों से हमें वर्तमाव की एक पूर्ण चित्र देखने को मिलता है। फासीवाद का जो घिनौना रूप आज भारतवासियों के सामने है, वह मज़हबी फासीवाद का है। कोई भी मज़हब आदमी ही नहीं, बल्कि पूरे समाज को नियंत्रित करने का काम करता है, वह आदमी के दैनन्दिन में जाकर उसे बदलता है, उसे दूसरों से प्यार करना और दूसरों पर करूणा करना सिखाता है। इसलिए समाज को मजहब की ज़रूरत होती है। प्रस्तुत उपन्यास में कोई नायक या महानायक नहीं था, इसलिए समय ही नायक-

महानायक और खलनायक बनाना पड़ा। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक कहते है- ‘‘यह उपन्यास मन के भीतर लगातार चलने वाली एक जिरह का नतीजा है। दशकों तक सभी कुछ चलता रहा।’’[43]

अतः न तो यह उपन्यास परंपरागत औपन्यासिक कृतियों की तरह नायक प्रधान न नायिका प्रधान है। इसमें ऐसा बहुत कुछ है जो आधुनिक पाठकों केलिए सर्वथा नवीन और विस्मयकारी है।

शीर्षक ‘कितने पाकिस्तान’ की प्रासंगिकता इसमें है कि जहाँ कहीं अन्याय अथवा अराजकता यहाँ तक कि रूढ़िवादिता भी दर्शित होती है, वहीं एक पाकिस्तान लेखक के अनुसार बन जाता है।

उपन्यास की मुख्य कथा वस्तुतः पृष्ठ – 62 से आरंभ होती है जहाँ से अदीब (लेखक) की अदालत लगने लगती है और उसमें बारी - बारी से वे सभी मुर्दे उपस्थित होने लगते हैं और अपने मुख से अपने ऊपर हुए जुल्म की कहानी कहते हैं।

उपन्यास का केन्द्र पात्र अदीब का कथन इस ओर इशारा करता है कि वैदिक युग में ब्रह्मणों ने किस प्रकार अपना पाकिस्तान बनाया था। समूचे उपन्यास में पाकिस्तान एक प्रतीक है विभाजन का, ऐसा विभाजन जो मज़हब, जाति, धर्म आदि के आधार पर इन्सान को इन्सान से, मुल्क को मुल्क से अलग रखता है।

इसमें दो राय नहीं है कि उपन्यासकार ने विश्व इतिहास, मिथक शास्त्र का ज्ञान विशेषकर भारतीय इतिहास का ज्ञान आम पाठकों को अभिभूत करने वाला है, जिसे फँण्टेसी शैली में प्रस्तुत कर पाठक वर्ग को आकर्षित करने का अद्‌भुत कौशल नुमायाँ हुआ है। वास्तव में इक्कीस्वीं सदी ही इस बात का फैसला करेगी कि यह उपन्यास कितना कालजयी है और मूल्य मीमांसा पर कितना अप्रतिहत है, शिल्प के स्तर पर कितनी सुन्दर है, संरचना, संवेदना और अभिव्यक्ति के स्तर पर समकालीन उपन्यासों में किस कदर श्रेष्ठ हैं।

3.5.1.1 भूमण्डलीकरण

बौद्धिक बौनेपन के कारण ही आज बहुसंख्यक लोग वास्तविकता की अन्तर्धाराओं से अपरिचित हैं। सततहीन को भेदने की अन्तदृष्टि के अभाव में वे बहिरंगी य़थार्थ को ही यथार्थ समझ बैठते हैं। ‘‘विभाजान और युद्ध जैसे मानवता के सबसे बड़े अभिशापों के बारे में भी लोगों की अज्ञता की समस्या सरलीकृत करने योग्य नहीं है।’’[44] क्योंकि लाश के अम्बरों और खून की नदियों से मुनाफा कमानेवाला एक वर्ग नेपथ्य में इसका निर्देश कर रहा है और करोड़ों अभागे उनके हाथों के मोहरे मात्र हैं। उनके असंख्य मुखौटों के पीछे के यथार्थ को क्रांति- दर्शी मनीषियों की पैनी नजरें ही पहचानती हैं। ‘‘इतिहास साक्षी है कि उपनिवेशवाद की दुरभिसंधियाँ ही दुनिया भर के युद्धों और विभाजनों का स्रोतस्थल हैं।’’[45] भूमण्डलीकरण या अपनिवेशवाद

के इस उत्तराधुनिक दुस्समय को इससे जोड़कर देखना है। भूमण्डलीकरण का, सत्ता केन्द्रों द्वारा प्रायोजित असंख्य आकर्षक मासूमी परिभाषाओं का पर्दा अब फट चुका है क्योंकि इसके तहत एक ओर सत्ताधारी वर्ग समझौतों पर रोजाना हस्ताक्षर करते हैं तो दूसरी ओर उसके शिकार बने दुनिया भर के अवाम की जिन्दगी दूभर होती जा रही है। भूमम्डलीकरण दुनिया को शोषण की जंजीरों में बाँधता है। न कि प्रेम के सूत्र से जोड़ता है। इसीलिए भूमण्डलीकरण के इस दुस्समय में विभाजनों की संख्या अर्थात् पाकिस्तानों की संख्या रोजाना बढ़ रही है। इन्हीं वर्तमान वास्तविकताओं को पृष्ठभूमि बनाकर रचे गए 'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर तमाम विभाजनों के विरुद्ध विपक्षी आवाज़ दर्ज करने के साथ - साथ शान्ति केलिए प्रतिसांस्कृतिक प्रतिरोध के विकल्प की तलाश भी करते हैं।

''पाकिस्तान विभाजनों का एक प्रतीक मात्र है चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त। समय की साक्षी है कि पाकिस्तानों को बनाने का उपक्रम अनादिकाल से अब तक सरगरम है।''[46] तमाम पुरानी सभ्यताओं के पुरोहितों और ब्राह्मणों ने अपने लिए अलग पाकिस्तानों को जन्म दिया था। ''आधुनिक संदर्भ में युगोस्लाविया, इराक, अफगानिस्तान, टुकडों में बंटे सोवियत यूनियन या वर्तमान रशियन फेडरेशन और खुद पाकिस्तान जैसे देशों में अलग- अलग 'पाकिस्तानों' की माँग हो रही हैं।''[47] इन दिगंतव्यापी पाकिस्तानों की सच्चाई की तह तक जाकर उसकी गहराई को जाँचने और

परखने की कोशिश बहुत कम ही हुई है। इस प्रयास में भारत पाकिस्तान विभाजन को नमूने के तोर पर कमलेश्वर ने पेश किया है।

1999 में भारत और पाकिस्तान के बीच हुई कारगिल की जंग वह प्रस्थान बिन्दु है जहाँ से सम्पादक अदीबे अलिया अपना सफर शुरु करता है। जंगों में हार- जीत का प्रचलित प्रतिमान जान- माल की तबाही है। अक्सर समाचार माध्यम, शहीदों, हताहतों घोसलों और जान- माल को हुए नुकसान के आँकड़े के आधार पर 'जवाबी कार्यवाई' की माँग करतै हैं। ''वे सच्चाई के सतहीपन पर ही प्रकाश डालकर चुप हो जाते हैं।''[48] यह सम्पादकों की सीमारेखा है। इसलिए 'क्या एक को जिन्दा रहने केलिए दूसरे की मृत्यु अनिवार्य है।' जैसे महत्वपूर्ण सवाल जब अलिया के मन में उठता है, तब सम्पादक अलिया अनुत्तरित होता है और, अदीबे अलिया जवाब की तलाश करता है।

3.5.1.2 सत्यान्वेषण और व्यंग्यात्मकता

वास्तव में पूरा उपन्यास उस साहित्यकार का सत्यान्वेषण है। इस प्रयास में सबसे पहले वह इतिहास में पहुँचता है। क्योंकि वर्तमान की जडें अतीत में हैं। थल-काल की सरहदों को लांघकर सच्चाई की तह तक की यात्रा में अदीब इतिहास में गोता लगाता है। लिखित इतिहास की सीमा यह है कि वह समय- समय पर सत्ताकेन्द्रों द्वारा प्रायोजित है और पेशेवर कलमधिस्सुओं द्वारा गढ़ित है। अदीब जानना

है कि सच्चा इतिहास इन्सान के दिलो- दिमाग में लिखा जाता है जिसे सिर्फ सृजनकार ही पढ़ सकते हैं। सत्ता, अदालत, समाचार, माध्यम, इतिहास जैसी व्यवस्था के तमाम दुर्गों पर अदीब व्यंग्य से वार करता है।

3.5.1.3 विभाजन का कारण

"हमारे इतिहास की मान्यता यह है कि भारत विभाजन का मूल कारण मुस्लिम लीग और जिन्ना के कठमुल्लापन और माउंट बैटन और अंग्रेज़ी हुकूमत की मजबूरी है। फिर आगे कुछ नहीं यानी इतिहास चुप हो जाता है।"[49] अदीबे अलिया इस गौरतलब बात की याद दिलाता है कि भारत के लिए विदेशियों का आक्रमण और शासन कोई नई बात नहीं थी। "वक्त ही गवाह है कि ईसा पूर्व तीसरी सदी के सिकन्दर के अभियान से लेकर शक, हूण, आफगान और तुर्कों ने भारत पर आक्रमण और शासन किया था।"[50] सिर्फ अंग्रेज़ों ने धर्म के आधार पर देश और संस्कृति का बंटवारा किया था। सिर्फ अंग्रेज़ों ने धर्म के आधार पर देश और संस्कृति का बंटवारा किया था। अंग्रेजी साम्राज्यवादियों की राजनैतिक पैंतरेबाजी को कमलेश्वर मैकॉले की बातों से बेपर्दा करते हैं। "सन् 1857 के हिन्दू- मुस्लिम एकता को तोड़ने केलिए मैं ने राजा - महाराजाओं, नवाबों, ताल्लूकेदारों की ऐय्याश औलादों केलिए उन्हीं की रियासतों में बोर्डिंग स्कूल स्थापित किए थे... और उन कुलीन स्कूलों में मैं ने इन्हीं नेटिवों के धर्मों की शिक्षा अनिवार्य बनाई थी... जिन्हें आज आप अफगानिस्तान के तालिबान कहते हो, वैसे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई

तालिबन हमने हिन्दुस्तानी रियासतों में पैदा कर दिए थे। हिन्दुस्तान की रियासतें कौम और धर्म के इस विभाजन को अंजाम देनेवाली हमारी साम्राज्यशाही के कारगर केन्द्र बन चुकी थीं। हिन्दु राज्यों में मुसलमानों का उत्पीडन और मुसलमान रियासतों में हिन्दु के उत्पीडन की नीति की सफलता हमने हासिल कर ली थी।... सन् 1857 की एकता हमें मंजूर नहीं थी... इसलिए इतिहास को खण्डित करना ज़रूरी था।''[51] इस मुल्क की साझी संस्कृति और भाषाई व धार्मिक विविधता का नाजायज फायदा भी उन्होंने उठाया। इतिहास की सच्चाई के उन्मीलन केलिए अदीबे अलिया अदालती तरीका अपनाता है। इस अदालत की एक खासियत यह है कि इस मामले से जुड़े तमाम लोग चाहे वे जिन्दा हों या मुर्दा, पेश किए जाते हैं और एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह हिन्दुस्तान की अदालतों के समान कब्रिस्तान नहीं है।

न्याय के नाम पर अन्याय करनेवाले आजाद भारत की अदालतों पर वार करते हुए इस उपन्यास में कमलेश्वर लिखते हैं- ''तो पहले उसे मरने दो। मेरे पास जिन्दा या अधमरों के लिए वक्त नहीं है। मुझे मुर्दों से निपटना है... अदालत ने अर्दली को झाड़ दिया। अर्दली तमाम उठा- अगर आप जिन्दा या अधमरों की बात नहीं सुनेंगे तो मरनेवालों की तादाद बढ़ती जाएगी... खून बटोरने से काम नहीं चलेगा.... खून का खुला हुआ नल बंद कीजिए! यह लगातार बह रहा है।''[52] उपनिवेशी शासन के बाद भी अपने हितों की हिफाज़त के लिए अंग्रेज़ों द्वारा की गई हैवानी तरकीबों को अदीब अपनी नैतिक अदालत में बेपर्दा करता है।

3.5.1.4 वर्तमान के दर्पण

इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धी यह है कि विगत विभाजनों की वजह को जाहिर करके वह खत्म नहीं होता है। अयोध्या जैसी वर्तमान लहूलुहान वास्तविकता से इस विषय को जोड़कर देखा गया है जो आगमी विभीजनों की बरुद है। कमलेश्वर भली- भाँति वाकिफ हैं कि अयोध्या समस्या का सम्बन्ध धर्म से कम और राजनीति से ज्यादा है। धर्म और राजनीति को मिलने का अंजाम विभाजन है। ऐसा कार्य स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भले ही अंग्रेज़ी शासकों की साजिश के तहत ही सही, हमारे अदूरदर्शी नेताओं ने किया। गौरतलब बात यह है कि मजहब – सियासी के नापाक गलबाही रिशते के अंजाम को अनदेखा करके भारत के सत्तानशीन शासक वर्ग आज भी वही गलत रास्ता अपनाते हैं। ‘‘साम्प्रदायिक ढंगों को उकसाकर अपना मतलब निकालने वाले उन फिंरंगी दरिंदों और आज के अनेक उत्तराधिकारियों के तौर- तरीकों में फर्क नहीं के बराबर है।’’[53] इसलिए आज़ाद भारत की बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित भूखमरों केलिए आज अयोध्या सबसे बड़ी समस्या बन जाता है।

3.5.1.5 नवफासीवाद

अयोध्या के सन्दर्भ में कमलेश्वर ने बड़ी बारीकी से इतिहास का अध्ययन और अनुसन्धान किया है। सत्ताकेन्द्रों द्वारा प्रयोजित इतिहास हमें किस कदर तक सच्चाई से दूर ले जाता है उसका एक और नमूना है बाबर द्वारा अयोध्या में राममंदिर का विध्वंस

करके वहाँ बाबरी मस्जिद बनाने का अफसाना। इस दुरभिसंधि को बेपर्दा करते हुए कमलेश्वर भारत की सामासिक संस्कृति के आगे सबसे बड़ी चुनौती बने नव-फासीवादी ताकतों का नाम लेकर शिनाख्त करते हैं। अयोध्या से राजनीतिक मुनाफा उठाते नवफासीवादियों की ओर संकेत करते हुए कमलेश्वर लिखते हैं- ''... भारत में रक्त के तालाबों में कमल उगाए जा रहे हैं।''[54]

''लेकिन इससे भी खतरनाक बात यह है कि लोग इन लहूलुहान वास्तविकताओं से अनजान हैं। वे या तो धार्मिक कठमुल्लेपन का शिकार बनकर अन्धे हो गए हैं या नव अपनिवेशवाद के सांस्कृतिक आक्रमण के शिकार होकर अवैध हो गए हैं।''[55] समय की सबसे बड़ी त्रासदी कोमलेश्वर यों शब्दबद्ध करते हैं- ''जो घटित हो रहा है, पर घटित होता हुआ दिखाई नहीं देता, जो सुनाई पड़ता है पर सुना हुआ प्रतीत नहीं होता, जो सोचा जा रहा है पर सोचा हुआ मालूम नहीं पड़ता, जो समझ जाता है पर समझ में नहीं आता... यही हमारे समय की त्रासदी है... क्योंकि हम सब मूल्यबोध के बावजूद मूल्यहीनता की चपटे में है।''[56]

3.5.1.6 राजनीतिक अंधापन

''सोमनाथ से रथयात्रा निकालकर, अयोध्या में मस्जिद गिराकर तथा पोखरान में अणुपरीक्षण करके शक्ति पीठ की स्थापना का सपना देख रहे हैं हमारे वर्तमान सत्ताधारी।''[57] भारत के वर्तमान स्तासीन फासीवादी शक्तियों की धज्जियाँ उड़ाते हुए

इस उपन्यास के अन्तिम भाग में कबीर के मुँह से कमलेश्वर जो कहलवाते है वह हमारे अन्धेपन पर भी प्रहार करता है- ''कुछ पागल लोग हैं जो पोखरान में शक्तिपीठ की स्थापना करना चाहते है- तुमने अखबारों में देखा नहीं यह सब उन्हीं धर्मान्ध पागलों के चेहरे हैं जिन्होंने कई साल पहले सोमनाथ से रथयात्रा निकाली थी... और वहाँ से चलकर बाबरी मस्जिद गिराई थी.... लेकिन तुम... तो.... मेरा... मतलब है.. अन्धा हूँ, यही न..अन्धा होने के कारण ही मैं...सब कुछ साफ- साफ देख लेता हूँ।''[58] स्पष्ट है कि यहाँ भारतीय सांस्कृतिक, राजनीतिक भूगोल उसकी संश्लिष्टता में उभर आया है।

3.5.1.7 नव उपनिवेशवाद

उपन्यास में यह स्पष्ट जाहिर है कि सांस्कृतिक संकट की एक वजह नवफासीवाद है तो दूसरी, साम्राज्यवाद द्वारा प्रयोजित नव उपनिवेशवाद है। 'कितने पाकिस्तान' अदीबे आलिया अर्दली महमूद अली से इस प्रकार कहते हैं ''... सौदागरों की जिस जमात ने अपना साम्राज्य स्थापित करके हिन्दुस्तान को जकड़ लिया है... वे ही उपनिवेशवादी फिरंगी अब चीन में बाज़ार बनाने के रास्ते तलाश रहे हैं।... बाजारों केलिए ही बनते हैं साम्राज्य! साम्राज्यों की नाभि बाज़ार से जुड़ी है। साम्राज्यों के रूप में बदल सकते हैं... वे प्रजातान्त्रिक आर्थिक साम्राज्य का रूप ले सकते हैं परन्तु इन पूँजीवादी प्रजातान्त्रिक आर्थिक साम्राज्य का रूप ले सकते हैं परन्तु इन पूँजीवाद

प्रजातन्त्रों को जीने केलिए मुनाफे की बाज़ारों की ज़रूरत है। बाज़ार! बाज़ार!! बाज़ार!!! यही है औद्योगिक क्रान्ति का सतत जीवित रहने की मज़बूरी भरा सिद्धान्त। यही है पूँजीवाद। इसी का दूसरा नाम है साम्राज्यवाद, तीसरा नाम है उपनिवेशवाद और आज दस्तक देती नई सदी में इसका कोई अन्य नाम भी हो सकता है।''[59] कमलेश्वर ने यद्यपि यहाँ नव उपनिवेशवाद शब्द का प्रयोग नहीं किया फिर भी हमें किसी भी नाम से उसे पुकारने की पूरी छूट देते हैं क्योंकि दानवों का नाम जो भी हो। हमारे लिए मुख्य उनके नाम नहीं, बल्कि मानव पर अजमाते अत्याचार हैं।

3.5.1.8 पूँजीवाद का वर्तमान दौर

पूँजीवाद का वर्तमान दौर. भूमण्डलीकरण और उपभोगवादी संस्कृति का है। ''भूमण्डलीकरण के नाम पर आजकल पूँजीवादी साम्राज्यवाद जड़ें जमा रहा है।''[60] उदारीकरण निजीकरण और जितने भी शब्द इसके साथ प्रयुक्त होते हैं, उसकी बहिरंगी, भंगिम के अंदर छिपे अमानवीय चेहरे को देखने पर हम कभी भी उसे 'संस्कृति' नाम नहीं दे पाएँगे। कमलेश्वर पूँजीवादी संस्कृति के हैवानी स्वरूप को व्यक्त करते हुए कहते हैं- ''कोई भी संस्कृति पाकिस्तानों के निर्माण के लिए जगह नहीं देती। संस्कृति अनुदार नहीं, उदार होती हैं... वह मरण का उत्सव नहीं मनाती, वह जीवन के उत्सव की अनवरत शृंखला है... इसी सामाजिक संस्कृति की ज़रूरत हमें हैं, क्योंकि वह जीवन का सम्मान करती है।''[61] संस्कृति के इस सही स्वरूप को व्यक्त करते हुए

कमलेश्वर प्रकारान्तर से अपसंस्कृति के विरुद्ध एक प्रति संस्कृति की अनिवार्यता ही नहीं बल्कि उसका स्वरूप ही दर्ज करते हैं।

3.5.1.9 मानवीयता का लोप

समकालीम समाज में करुणा जैसे मानवीय गुण गुम हो रहे हैं। इसलिए कमलेश्वर आँसू को सूख जाने को संस्कृतियों का उजड़ जाना मानते हैं। सदियों से मैं यही कह रहा हूँ और देख रहा हूँ... सदियों मनुष्य प्रकृति का शोषण करता रहा। प्रकृति बाँझ हो गई तो मनुष्य ही मनुष्य का शोषण करने लगा... इसलिए अब आँसूओं की बाढ़ आ गई.. क्योंकि मनुष्य ने मनुष्य के खिलाफ अब यन्त्र का आविष्कार कर लिया है...''[62]

जब पूँजीवादी उपभोगवादी संस्कृति हमारी जिन्दगी को अपनी गिरफ्त में करते हैं तो, आदमी पर इसका असर अनेक रूप से दिखाई पडेगा। इस संस्कृति का लक्ष्य हमेशा मुनाफा कामना ही है। इसके केन्द्र में बाज़ार है। पुराने और वर्तमान बाज़ार का फर्क यह है कि माँग और आपूर्ति का अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त आज अनुपादेय हो गया है। ''पूँजीवाद ने ऐसी एक संस्कृति को विकसित किया है कि खरीददार अपनी ज़रूरत की चीज़ खरीदने के बजाय ऐसी गौरजरूरी चीज़ें खरीदने को मज़बूर हो जाता है। इतना ही नहीं खरीदने के उपरान्त वे महसूसते भी हैं कि उनकी शान शौकत और हैसियत बढ़ गई है। इन्सानी सभ्यता का भविष्य सौदागरी सभ्यता में तब्दील होने पर

नफा- नुकसान आर्थिक मुनाफे की तराजू पर तौले जाते हैं। इन्सानी रिश्ता, मित्रता, प्रेम, संवेदना आदि मूल्य कहीं गुम हो जाते हैं।[63]

3.5.1.10 मूल्यों का बदलाव

''जब आदमी और आदमी के बीच की दूरी बढ़ जाती है तब मूल्य भी बदलते है।''[64] इस अस्पृहणीय सभ्यता के असर को 'कितने पाकिस्तान' में यों व्यक्त किया गया है ''कहाँ ले चलू अदीबे आलिया? बाहर तो शोर औऱ भी ज्यादा है.... हाहाकार, चीत्कार, आगज़नी, सामूहिक हत्यायें, बलात्कार, चीख पुकार, अपहरण, अजन्मे बच्चों के लो थड़े, कीड़े पड़ी बिजबिजाती फूली हुई लाशें, अर्धजीवित और मृत देहों का माँस खा – खाकर थके हुए लकड़बग्धे, कुत्ते, गिद्ध... और रक्त प्लावन का दृश्य! यह तो सहस्रों साल पहले हुए जल- प्लावन से भी भयंकर दृश्य है।[65]

3.5.1.11 बाज़ारवादी संस्कृति की अमानवीयता

इस वातावरण हमारी वर्तमान लहूलुहान वास्तविकताओं के आमने- सामने कमलेश्वर इस प्रकार व्यक्त करते हैं- ''यातना, विषमता और अवसाद के बीच रह देते है कृत्रिम उत्सव और उल्लास। सड़ती लाशों के अम्बार पर छिड़कते हैं क्रिश्चियन ड़ियोर, शैनल और अमुआगो क्रिस्टल के इत्र। कटी हुई लहूलुहान गर्दनों में ये पहनाते हैं लानटिन की नेकटाइयाँ और मेजोरिका के नेकलेस। टूटी हुई कलाइयाँ में ये बाँधते हैं राडो और रेमम्डवील की घडियाँ और चकनाचूर उँगलियों के ये पकड़ाते हैं

मोटरबैक और वाटरमैन की कलम।''[66]यह अपसंस्कृति हमसे अपनी अस्मिता और स्वत्व को छीन लेती है। इसलिए हमें क्या खाना है, क्या पीना हैं, क्या पहनना है, कब सोना है आदि बातों का निर्णय हम नहीं कर पाते हैं। हम उनके इशारे पर नाचनेवाली कठपुतली बन जाते हैं।

दिल्ली में फिलहाल हूई मॉडल जेसिका लाल की हत्या जैसी अनगिनत घटनाओं को हमें नवउपनिवेशवादी संस्कृति की पृष्ठभूमि में आंकने की अनिवार्यता को व्यक्त करते हुए कमलेश्वर लिखते हैं- ''यह हमारी नाचती गाती कल्चर की पहली शहीद है... पैदा होने के फौरन बाद इसने माँ का दूध ज़रूर पिया था। फिर नहीं पिया। यह लगातार लिकर या बीयर पीती रही, क्योंकि दूध से ज्यादा प्रोटीन बीयर में। सेब के रस से कम कैलोरिज़ है बीयर में... यही जेसिका लाल के दिलकशा और खूबसूरत होने का राज़ था। वह तूफानी खूबसूरती, जिसे देखकर मनु शर्मा पागल हो गया था।...''[67] अर्थात इस उपसंस्कृति के पास अपना अलग सौन्दर्यशास्त्र है। ''सौन्दर्य के नए मानदण्ड और नई कसौटियाँ वे ही बनाते हैं। मनुष्य की सौन्दर्य चेतना पर हमला करते हुए बाज़ार की उपलब्ध वस्तुओं से बनाए गए एक कृत्रिम सौन्दर्य को ही सही सौन्दर्य होने का भ्रम फैलाते हैं।''[68] कहना न होगा कि इस शिकंजे में नारी ही ज्यादा फँस गई है। विश्व भर की पूँजीवादी संस्थाओं के तत्त्वाधान में लगातार चलती सौन्दर्य

प्रतियोगिताओं और उसमें जीत जानेवाली का नाम जेसिका हो गया और कोई, वे तुरन्त ही मॉडल में तब्दील होती है।

इस आर्जित सौन्दर्य की नैतिक विकरालता को दर्शाने केलिए ही कमलेश्वर ने जेसिका द्वारा माँ के दूध के बजाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीयर पीने की बात पर ज़ोर देते हैं। ''दर असल इस सांस्कृतिक घुसपैठ के दो लक्ष्य होते हैं। एक है, बाज़ार संस्कृति को फैलाकर पूँजीवादी उपभोगवादी संस्कृति को बढ़ावा देना और दूसरा है, सांस्कृतिक एकता की नष्ट करके नव उपनिवेशवाद के विरुद्ध जनता के एकजुट प्रतिरोध को तोड़ना।''[69]

3.5.1.12 विभाजन के फलस्वरूप

कमलेश्वर साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा कौमों की तक्सीम करके पाकिस्तानों के गढ़न के तरीके को इससे जोड़कर देखते हैं। विभाजित करके शर्तों और समझौतों के ज़रिए अपने नियन्त्रण में रखने की रणनीति का पर्दाफाश करते हुए कमलेश्वर लिखते हैं कि ''नियन्त्रण द्वारा आत्माओं को तोड़ा जाता है...फिर उन्हें विभाजित किया जाता है... उनमें सांस्कृतिक प्रतिरोध की शक्ति विखण्डित की जाती है और तब बाज़ारवादी जोंकें उस विभाजित कौम का सारा रक्त चूस लेती हैं। खण्डित संस्कृति के शमशानों में तब उत्सव के बाज़ार स्थापित होते हैं। धर्म और इतिहास शोषकों के हाथों में खिलौना बनकर नाचते- गाते, जश्न मनाते अपने ही विभाजित अंग के शत्रु और अपने

विनाश का कारण बन जाते हैं... बड़ी सभ्यताओं को तोडकर उन्हें बन्दी बनाने केलिए विभाजन का यही रास्ता उन असभ्य संस्कृतियों ने चुना है... जिनके खेतों में सिर्फ बारूद और बन्दूकें उगती हैं... ।''[70]

3.5.1.13 विश्वपूँजीवाद की चुनौती

''विश्वपूँजीवाद आज दुनिया भर की संस्कृतियों के आगे चुनौती उपस्थित कर रहा है। अमेरिका के नेतृत्व में हो रहे इस हमले में संयुक्त राष्ट्रसंघ नाकाम साबित हो चुका है।''[71] संयुक्त राष्ट्रसंघ के वर्तमान सचिव काफी अन्नान का नाम लेकर कमलेश्वर इस उपन्यास में पूँजीवाद और उनके सभी तरीकों पर वार करते हैं- ''काफी अन्नान से कहो कि दुनिया की छाती में जो जेड दर्द बार- बार उठता है... और उसे साँस लेने में जो तकलीफ लगातार हो रही हैं उसके इलाज के लिए उन्हें उस दुनिया का कामकाज सौंपा गया था, लगता तो यहाँ तक है कि एक ध्रुवीय शक्ति के पक्ष में उन्होंने अपने वह नैतिक हथियार भी डाल दिए हैं, जो बड़ी उम्मीद से उन्हें सौंपे गए थे... इसी का नतीजा है विभाजन और दुर्दान्त दमन का यह दौर... अगर कोफी अन्नान भूल गए हैं तो उन्हें याद दिलाओ कि आर्थिक संस्कृतियों के संघर्ष के नाम पर जो युद्ध चले और चल रहे हैं, वे हर देश और संस्कृति के आम आदमी के विनाश का कारण बन रहे हैं... वे अंधेरे इतिहास और धर्माध विश्वास को जन्म देकर जन और जातिसंहार के वाहक बन गए हैं।''[72]

3.5.1.14 नव उपनिवेशवाद का जन्म

इस से पूरी दुनिया का लूट हो रहा है। बहुसंख्यक लोगों को भिखमंगे बनानेवाली पूँजीवादी संस्कृति पर वार करते हुए कमलेश्वर कबीर के ज़रिए माउंटबेटन से कहते हैं- ''हम भिऱमंगों की नस्ल लुटेरों ने पैदा की है। हम जैसे भिखारियों की नस्ल तुम्हारे इंटस्ट्रियल रेवोल्यूशन से पहले दुनिया के किसी देश में मौजूद नहीं थी। अमीर और गरीब पहले भी थे लेकिन, भिखारियों का जन्म उपनिवेशी बन्दोबस्त के साथ हुआ... जब आर्थिक और जीवनगत न्याय के मूल्यों का अन्त और मुनाफा केन्द्रित अन्ध शोषण और स्पर्धा का जन्म हुआ, नहीं तो इससे पहले गरीब तो थे पर भिखारी नहीं थे। विश्व का न्यायगत आर्थिक सन्तुलन तुम साम्राज्यवादियों, उपनिवेशवादियों ने खण्डित किया है... नहीं तो मुझ जैसा लाचार आदमी भारत और पाकिस्तान में भीख माँगने केलिए मज़बूर नहीं होता, तो एक दूसरे के खिलाफ दुआ माँगते हैं। तुम उपनिवेशवादियों ने हमारी दुआएँ भी दोगली बना दी... ।''[73]

3.5.1.15 संस्कृति से उखाटना

बडी सभ्यताओं को निस्तेज करने का सबसे आसान तरीका है उसे अपनी संस्कृति से उखाड़ना लू- शुन के जरिए वर्तमान चीन में भूमण्डलीकरण के उपरान्त की सांस्कृतिक तस्वीर खींचते हुए कमलेश्वर लिखते हैं – ''हमारी जाति को आकर्मण्य बनाकर वे परछाइयाँ इन लुटेरों ने छीन ली हैं... हमें उन्होंने संस्कृतिविहीन

करना चाहा है, संस्कृति की पूर्वजों की जीवित परछाइयों का संसार है। उनकी उपस्थित हमेशा परछाई की तरह मनुष्य के साथ रहती है... बड़ी सभ्यताओं को निस्तेज करने का यही तरीका इन विदेशी लुटेरों ने निकाला है... यह पहले पूर्वजों की परछाइयाँ छीनते हैं।''[74]

लेकिन सबसे बड़ी त्रासदी यह नहीं, इस अपसंस्कृति को फैलानेवाले घोषणा करते हैं कि वे दुनिया को सभ्य बना रहे हैं, और उसी अपसंस्कृति को सही संस्कृति मानने हैं, अधिकांश लोग। लू शून कहते हैं- ''सारी उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी सत्ताएँ खोखले नगाडों पर इन्सानी खाल के पल्ले मढ़ कर नगाड़चियों की तरह घोषण कर रही हैं कि उन्होंने असभ्य दुनिया को सभ्य बनाया है।''[75]

समाज पर इसका अनेकायमी असर पड़ता है। इसे विभिन्न किस्से के विभाजनों से जोड़कर देखना हैं। ''विकास के नाम पर मुख्य धारा से बराबर होशिए की ओर खदेड दिए जाने वाले या खत्म किए जानेवाले दलित, आदिवासी, परस्थितिकी और नारी सम्बन्धी सवालों को भी इस परिप्रेक्ष में मूल्यांकन करना है।''[76] आनुषंगिक ढंग से ही सही, इन्हें समस्याओं पर भी उपन्यासकार ने विचार किया है।

3.5.1.16 नारी शोषण

पुरुष वर्चस्व व्यवस्था में नारी की यातनाओं की लम्बी परम्परा रही है। वैदिक युग में, ऋषि गौतम की पत्नि अहल्या के साथ इन्द्र का अत्याचार पुरानी सभ्यताओं के

देवजातियों द्वारा नारी पर किए गए अनगिनत अत्याचारों का उज्जल नमूना है। ''आज फर्क मात्र इतना है कि देवजाति के स्थान पर सत्ता और साधन सम्पन्न पुरुष आ गए हैं।''[77] गौर तलब बात यह है कि वक्त चाहे दंग, जंग या अमन का हो नारी हमेशा शिकार रहती है। जंग के संदर्भ में यह अत्याचार किस कदर तक मानवीयता के तमाम सरहदों को पार करते हैं इसका उदाहरण बंग्लादेश की जंग के परिपेक्ष्य में चित्रित है-

''और वह अनावृत औरत उसी तरह, बिना किसी झिझक से उठकर खड़ी हो गई थी... पुतली की तरह खूबसूरत वह औरत धीरे- धीरे सैनिकों की भीड़ की ओर बढ़ी... और तब तूफान सा आ गया। वे सारे के सारे उस पर टूट पड़े। कितनों के बाँहों में होता हुआ औरत का सुनहला गुलाबी शरीर उनके बीच- कभी- कभी इस तरह चमक जाता, जैसे बाढ़ के गंदले पानी में किसी बच्चे का खिलौना डूबता उतराता- सा बह रहा हो...''[78]

3.5.1.17 नारियों की सर्वकालीन विवशता

''अपने देश में, अपने घर में पति के सामने बन्दूक की नोक के दहशत के तले पहले दुश्मन फौजियों और फिर देशी फौजियों के सामूहिक बलात्कार का शिकार होने के बावजूद उन्हीं दरिन्दों के बारे में समाचार संवाददाताओं से उनके वहशियाना बदसलूकी दर्ज करने के बजाय तारीफ करने की विवशता तमाम उत्पीडित नारियों की सार्वकालीन विवशता है।''[79] समाचार माध्यम इस प्रकार की वहशियाना अन्दाज़ को

बी सच के रंग के साथ दुनिया के सामने प्रस्तुत करते हैं, जो मध्यम व सत्ता के नापाक सम्बन्धों का निदर्शन भी है। ऐसे बहशी वातावरण में मज़हबी कट्टरवाद भी साथ है तो नारी जीवन बेशुमार दुशवारों की गिरफ्त में आ जाएगा। सलमा, विद्या, जनेब की त्रासद जिन्दगी को सिर्फ विभाजन की ही नहीं उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में भी मूल्यांकन करना है। तब इन प्रेमकहानियों में भी वह परिपक्वता साफ जाहिर होती है जिसें कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर' से 'कितने पाकिस्तान' तक की कथायात्रा में अर्जित किया है। ''यह सिर्फ जुगरफिया यानी भौगोलिक तकसीम की ही नहीं बल्कि नर- नारी की तकसीम का भी अंजाम है।''[80]

''इस उपन्यास का सबसे सबल पक्ष यह है कि इन ज्वलंत समस्याओं का न कोई सरल समीकरण प्रस्तुत किया गया है और न मुक्ति का कोई राजमार्ग दर्शाया है।''[81] फिर भी इसमें ऐसे कई संकेत हैं जो अनेकायामी अर्थसम्भावनाओं से लैस हैं। प्रेमिथ्यूस, गिलगमेश, अन्धे भिखारी कबीर औऱ अश्रुवैद्य इस उपन्यास के ऐसे चार सशक्त पात्र हैं जिनकी आवाज़ में मानवता के मुक्तिकामी संघर्ष की आकांक्षा गूँज उठती है। इस पात्रों की यह खासियत भी है कि ये थल- काल की सीमाओं को लाँघकर वर्तमान में हस्तक्षेप करते हैं और समकालीन संघर्षों में शरीक होकर अपने दायित्व को भरपूर निभाते हैं। ''आँसू खून और पसीने को संजोकर उसके परीक्षण में लगे अश्रुवैद्य बाद में मनुष्य के सपनों को संजोकर उन्हें स्वप्ननगरी में सुरक्षित रखता

है। उसी स्वप्न नगरी में सुरक्षित जीवनोषधि की खोज में आए गिंलगमेश के माध्यम से कमलेश्वर एक और बात कहना चाहते हैं कि तमाम नाराजगियों और मोहभंगों के बावजूद हमें कम से कम उस सुनहले सपने को सुरक्षित रखकर आगामी पीढ़ी को सौंपना है।''[82]

3.5.1.18 उपन्यास में व्यंग्यात्मकता

कबीर को अन्धे और भिखमंगे का जामा पहनाने के ज़रिए उपन्यासकार प्रकारन्तर से हम पर व्यंग्य ही करते हैं क्योंकि अन्धे होने के बावजूद वे ही वर्तमैन वास्तविकताओं को जानते हैं। ''तभी उनके मुँह से यह महत्वपूर्ण सवाल सहज ही निकलता है- आजादी के इतने सालों बाद भूख और भीख के सिवा हमें क्या मिला है ? चगाई और पोखरान में बोधी वृक्ष के पौधे रोपने के लिए प्रस्थान करते कबीर के चित्र के साथ उपन्यास की विवृतात्मक समाप्ति प्रतीकात्मक और अर्थवान है।''[83]

3.5.1.19 विश्लेशणात्मकता

'कितने पाकिस्तान' के इस विश्लेशण से यह जाहिर होता है कि कमलेश्वर उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद के तमाम तरीकों से वाकिफ हैं।''[84] इसलिए वे लिखते हैं- ''सच्चाई यह है कि एशिया ने सारे धर्म और सभ्यताएँ पैदा की है ओर योरूप ने अपनी औद्योगिक क्रान्ति के बाद अपने मुनोफे के विदेशी बाज़ार तलाशने

शुरू किए हैं... इसीलिए तुम पश्चिमवासी भौतिकवादियों ने प्राच्य की सभ्यताओं पर आक्रमण शुरू किए है... तुम्हें नहीं मालूम था कि तुम्हारे समुद्री तटों के उस पार कोई और दुनिया भी है... तुमने सिर्फ सोने की चिड़िया हिन्दुस्तान का नाम सुना था... जिसे खोजते हुए तुम्हारे समुद्री डकैत हिन्दुस्तान के मलाबार तट तक पहूँते थे... और भारत की तलाश करते- करते तुम्हारा कोलम्बस अमरीका की अछूती धरती तक पहूँचा था। इस सत्य को मत भूलो कि भारत की तलाश में ही नई दुनिया तुम्हारे हाथ आई थी। तुम्हारे पास धर्म नहीं, धर्म का मुखौटा था ।''[85] सांस्कृतिक हमले के ज़रिए साम्राज्यवाद आजकल तीसरी दुनिया को उसकी देशज संस्कृति से विच्छिन्न करके वहाँ अपसंस्कृति का साम्राज्य स्थापित करते हैं। कमलेश्वर की मूलदृष्टि प्रतिसंस्कृति की है। इस उपन्यास का उपपाठ यही उजागर करते हैं। इस सन्दर्भ में साहित्य की प्रतिबद्धता का सांस्कृतिक पक्ष सुस्पष्ट है।

इस रचना की अर्न्तवस्तु की तमाम बहुस्वरताओं के बावजूद यह अपनी समग्रता में विभाजनों पर केन्द्रित है। कथा विन्यास में भिन्न प्रकार के विभाजनों की बातें ही बिखरी पड़ी हैं।

ठगहन मानवीय संसक्ति ही इसका आधारशिला है। इसलिए इस उपन्यास पर ऐतिहासिक राजनैतिक जैसे बिल्ला लगाना नाजायज़ होगा क्योंकि, भूमिका के बतौर वह उपन्यास अनेक सालों से मानवमुक्ति से सम्बन्धित अनगिनत जिरहों की गिरफ्त में

पडी रचनात्मक आत्मा की बेचैनी की अभिव्यक्ति है।''[86] यह बेचैनी एक सही संस्कृति कर्मों की ईमान्दारी की गवाह है। इस रतना के शब्दों में मुखरित और शब्दों के बीच के मौन में गुँफित प्रतिसांस्कृतिक प्रतिरोधी आवाज़ साम्राज्यवादी नव-अपनिवेशवाद के विरुद्ध के वर्तमान कानफोडू शोर में दर्ज सबसे विश्वसनीय आवाज़ है।

3.6 तिलिस्मी उपन्यास

3.6.1 एक और चन्द्रकान्ता (दो भाग)

प्रस्तुत उपन्यास बाबू देवकीनंदन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' सीरियल से प्रेरणा ग्रहण करके लिखी गयी है। इसके लिए दो भाग है। लेखक के अनुसार यह ''भाषायी स्तर पर एक विनम्र प्रयास है ताकि हिन्दी अधिकतम आम- फहम बन सके । ''[87]

चमत्कार, ऐयारी, फंतासी, बाधाएँ कर्तव्य, दोस्ती, युद्ध पराक्रम, प्रतिशोध, मक्कारी, वासना, वफादारी आदि को बखनती और परत-दर- परत खुलती - बंद होती अनेक कथा - उपकथाओं की इस उपन्यास श्रृंखला में मात्र प्यार- मोहब्बत की दास्तान को नहीं बखाना गया है बल्कि इस दास्तान के बहाने लेखक ने अपने देश और समाज की झाड़ा- तलाशी ली है। यही कारण है कि कुँवर वीरेन्द्र सिंह और राजकुमारी चन्द्रकान्ता की उद्दाम प्रेमकथा को बारंबार स्थापित करते हुए, लेखक कहीं दो देशों की

परस्पर शत्रुता के बीच संधि की कोशिश को शिरोधार्य करता प्रतीत होता तो कहीं भ्रष्टाचार, राष्ट्रद्रोह की प्रतिच्छाया वाली उपकथाओं के सृजन में व्यस्त दीखता है। कहना न होगा कि यह हिन्दी की एक समकालीन ऐसी 'तिलिस्मी' उपन्यास श्रृंखला है जो हमारे अपने ही आविष्कृत रूप - स्वरूप को प्रत्यक्ष करती है। इस उपन्यास श्रृंखला के सैकड़ों बयानों की अखण्ड पठनीयता लेखक की विदग्ध प्रतिभा का जीवंत साक्ष्य है।

निष्कर्ष

कमलेश्वर अपनी कथा - यात्रा में जिस प्रकार अनेक पड़ाव और मंजिलें पार की है, उसी प्रकार अपनी औपन्यासिक यात्रा में भी। यथार्थ जीवन की सबल अभिव्यक्ति और समर्थ भाषा, कमलेश्वर के उपन्यासों में जानीमानी विशेषताएँ है। अपने उपन्यासों में सहज, स्वाभाविक शैली और शिल्प को अपनाया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रण केलिए जीवन का विशाल पट चुना है एवं विभिन्न परिपार्श्व की उनकी यथार्थवादी दृष्टि ने अत्यंत सूक्ष्म तथा सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

संदर्भ सूचि

1. कमलेश्वर (संपादक), कथाकृत्त, पृ.163
2. कमलेश्वर (संपादक), 'समान्तर', (भूमिका), पृ.13.
3. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ.231.
4. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य, पृ.107.
5. विजयमोहन सिंह, आज की कहानी, पृ. 47.
6. कमलेश्वर, तीन दिन पहले की रात (समग्र कहानियाँ), पृ. 190.
7. कमलेश्वर, लहर लौट गई (समग्र कहानियाँ), पृ. 399.
8. कमलेश्वर, लहर लौट गई (समग्र कहानियाँ), पृ. 402.
9. कमलेश्वर, तीन दिन पहले की रात (समग्र कहानियाँ), पृ. 196.
10. कमलेश्वर, देवा की माँ (समग्र कहानियाँ), पृ. 156.
11. कमलेश्वर, दूसरे (समग्र कहानियाँ), पृ. 279.
12. कमलेश्वर, सींखचे (समग्र कहानियाँ), पृ. 69.
13. कमलेश्वर, आत्मा की आवाज़ (समग्र कहानियाँ), पृ. 101.
14. कमलेश्वर, जो लिखा नहीं जाता (समग्र कहानियाँ), पृ. 383.
15. कमलेश्वर, अपना एकांत (समग्र कहानियाँ), पृ. 621.
16. कमलेश्वर, लाश (समग्र कहानियाँ), पृ. 593.
17. कमलेश्वर, बेकार आदमी (समग्र कहानियाँ), पृ. 148.
18. कमलेश्वर, बयान (समग्र कहानियाँ), पृ. 434.

[19] कमलेश्वर, एक सड़क सत्तावन गलियाँ , संस्करण, 1989, पृ. 65.

[20] कमलेश्वर 'डाक बंगलाट' राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, तीसरा संशोधित संस्करण, 1979, पृ. 62.

[21] तीसरा आदमी, पृ.22.

[22] वही, पृ. 7.

[23] वही, पृ. 22.

[24] वही, पृ. 36

[25] कमलेश्वर, समुद्र में खोया हुआ आदमी, पृ. 43.

[26] वही, पृ.48.

[27] कमलेश्वर, आगामी अतीत, पृ.11.

[28] वही - पृ.15.

[29] कमलेश्वर, वही बात, पृ.28.

[30] वही, पृ. 49.

[31] कमलेश्वर, अनबीता व्यतीत, पृ.8.

[32] कमलेश्वर, लौटे हुए मुसाफिर, पृ.87.

[33] वही, पृ.114.

[34] वही, पृ. 120.

[35] कमलेश्वर, रेगिस्थान, पृ.7.

[36] वही, पृ.45.

[37] कमलेश्वर - समग्र उपन्यास, पृ. 668.

[38] वही, वृ. 123.

[39] वही, पृ. 110

[40] वही, पृ. 156.

[41] वही, पृ. 159.

[42] कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ.1.

[43] कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ.3

[44] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 56.

[45] वही, पृ.56.

[46] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 57.

[47] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 57.

[48] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 57.

[49] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 57

[50] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 57

[51] कमलेश्वर, *कित्ने पाकिस्तान*, पृ. 326

[52] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 63.

[53] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 58.

[54] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 179.

[55] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 59.

[56] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 179.

[57] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 59.

[58] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 362.

[59] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 291.

[60] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 60.

[61] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 182.

[62] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 23.

[63] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 60.

[64] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 61.

[65] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 47.

[66] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 291.

[67] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 291

[68] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 61.

[69] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 62.

[70] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 219

[71] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 62

[72] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 46.

[73] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 282-283

[74] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 294.

[75] वही, पृ. 297.

[76] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 63.

[77] वही, पृ.65.

[78] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 339

[79] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 64

[80] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 64

[81] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 64

[82] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 64

[83] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 64-65.

[84] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 65.

[85] कमलेश्वर, *कितने पाकिस्तान*, पृ. 295

[86] एऩ मोहनन्, *उत्तरशती का हिन्दी उपन्यास*, पृ. 65.

[87] कमलेश्वर, एक और चन्द्रकान्ता (भाग – 1),जिल्दे से